

दिव्य-स्फुरण

चन्द्रस्वामी



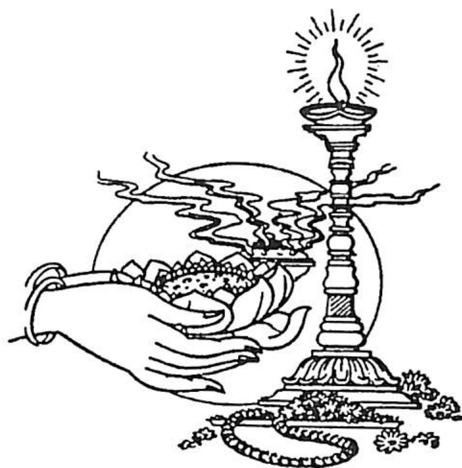
दिव्य-स्फुरण

चन्द्रस्वामी

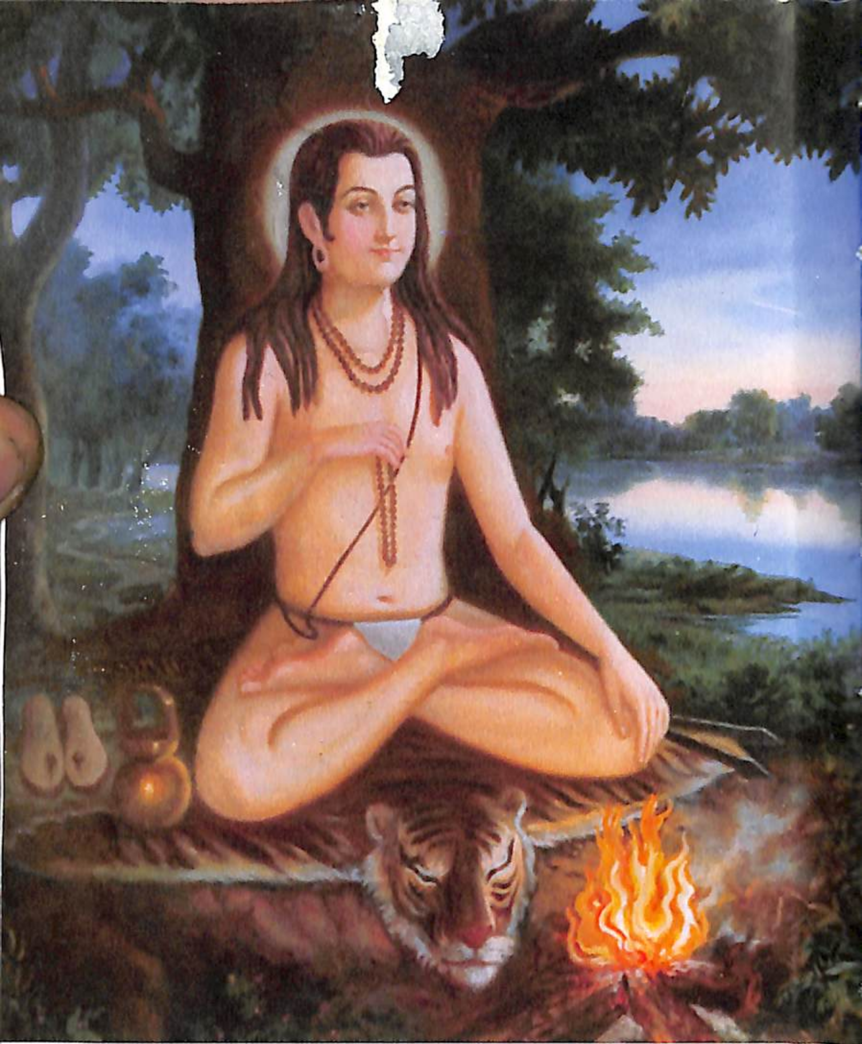
प्रकाशक : सीकर्स ट्रस्ट
साधना केन्द्र आश्रम
ग्राम-डुमेट, डाकखाना-अशोक आश्रम
जनपद-देहरादून, उत्तरांचल
भारत, पिन-248125
दूरभाष - 01360-22204

चतुर्थ संस्करण : 5000 प्रतियाँ
गुरुपूर्णिमा, 24 जुलाई, 2002

लेज़र कम्पोज़िंग एवं मुद्रण : शिवा ऑफसेट प्रेस, देहरादून



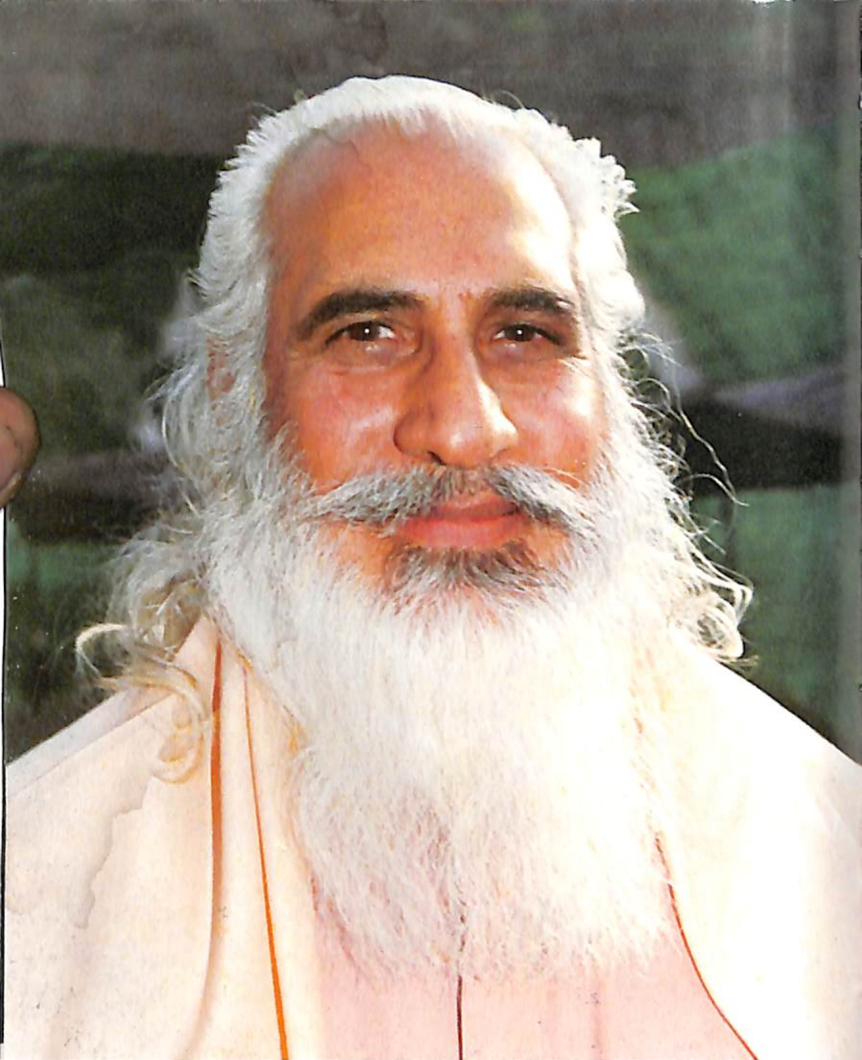
परमपूज्य उदासीनाचार्य श्री श्रीचन्द्र भगवान एवं
बालयति बाबा भूमनशाहजी की
मधुर स्मृति में सादर-सप्रेम समर्पित



उदासीनाचार्य श्री श्रीचन्द्र भगवान



बालयति बाबा भूमनशाहजी उदासीन



परमसंत श्रीचन्द्रस्वामीजी उदासीन

॥ ॐ ॥

नम्र निवेदन

(यहाँ हम करनाल निवासी, श्रीगुरुदेव के परमभक्त श्रीखुशीरामजी के शब्द उद्धृत कर रहें हैं जो उन्होंने 31.01.1971 को प्रकाशित सहज उपदेश माला, भाग-2, के प्रथम संस्करण में लिखे थे।)

परमसंत श्रीचन्द्रस्वामीजी महाराज का परिचय देना तो मानों सूरज को दीपक दिखाना है। भक्त भगवान् का परिचय दे तो क्या दे, उसका तो सर्वस्व भगवान् ही है। मुझे इस बात का संतोष है कि दमा आदि रोगों से आक्रान्त, 65 वर्ष की आयु वाला मेरे जैसा निकम्मा व्यक्ति अपने पूज्य स्वामीजी को पाकर धन्य हो गया। जिस वस्तु को बहुत से योगी भी नहीं पा सके, वह श्रीगुरु के

मार्गदर्शन में केवल जप द्वारा मुझे मिला है, और आज उन्हीं श्रीगुरु के उपदेश के संग्रह को प्रकाशित करके, मैं फूला नहीं समा रहा हूँ।

स्वामीजी महाराज द्वारा लिखित सहज उपदेश माला का यह दूसरा पुष्प है। प्रथम पुष्प तो आप पढ़ ही चुके होंगे और उससे पूर्ण लाभान्वित भी हो चुके होंगे। संतों का विचार है कि वह उपदेश माला (108 सूक्तियों का संग्रह) साधक, भक्त, योगी और सिद्ध सभी के जीवन को उसी प्रकार दिशा प्रदान करता है, जिस प्रकार सरगम संगीतज्ञों को।

जब मैं अपने जीवन से निराश होकर तीर्थस्थलों में भटकता हुआ हरिद्वार आया था, तभी मुझे पता चला था कि सप्तऋषि आश्रम से कोई एक मील पर, गंगा के उस पार निर्जन वन में एक तपस्वी तपस्या-रत हैं। मुझे यह पता चला था कि वे विज्ञान के विद्वान होते हुए भी आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने

के विचार से, अनुसंधान करते हुए जम्मू (काश्मीर) के घोर जंगलों में 5 वर्ष पर्यन्त कठोर साधनामय एकाकी जीवन व्यतीत करने के बाद, हरिद्वार में प्रवास कर रहे हैं।

जब श्रीगुरु के चरणों का प्रथम दर्शन का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ तब वे 'सप्त सरोवर' झाड़ी की एक कुटिया में प्रवास करते हुए वर्ष के छः महीने काष्ठ मौन में व्यतीत करते थे और छः महीने आंशिक मौन में, यानी शाम के दो घंटे सत्संग के लिए, उन्होंने साधकों और भक्तों को दे रखे थे।

आज भी उनका जीवन उसी काष्ठ मौन के अनुसार नियमित प्रकार से चल रहा है, किन्तु अब वे हरिद्वार के सेवक-निवास में भक्तों के आग्रह से आ गये हैं। क्योंकि गत वर्ष गंगा का प्रवाह इतना तीव्र हुआ कि 15 अक्टूबर, 1970 को जो उनका काष्ठ मौन खुला, उस समय अनेक दर्शनार्थी स्त्री-पुरुष, सभी हताश गंगा के इस पार ही खड़े

रहे। इस परिस्थिति को देख, स्त्रियों के रुदन को सुन, लाचार हो, गुरुदेव को स्थायी रूप से इस पार आना पड़ा।

श्रीगुरु के इस सुखद निर्णय से मुझे ही नहीं, बल्कि सभी को एक विशेष खुशी हुई है और सभी के लिए श्रीचरणों का दर्शन सहल हुआ है। किन्तु डर है कि— कहीं हम प्रमाद वश उनके नियमित जीवन में व्यवधान डालने को उद्यत न हो जायँ। अतएव अपने सह-सेवकों से, प्रियजनों, श्रद्धालुओं एवं भक्तों से निवेदन है कि वे श्रीगुरु के मौन के दिनों में उनसे मिलने का कष्ट तो नहीं ही करें, पत्रादि भी लिखकर उन्हें विक्षेप न पहुँचायें, और जो सायं को दो घण्टें मिलने का समय निश्चित है, उससे ही सन्तोष मानें और पूरा-पूरा लाभ उठाने की चेष्टा करें।

विनीत

खुशीराम

करनाल

पूज्य श्रीचन्द्रस्वामीजी का संक्षिप्त जीवन कथामृत

परमसंत श्रीचन्द्रस्वामीजी ने दिनाँक 5 मार्च, 1930 को पाकिस्तान स्थित मिन्टगोमरी जिले के भूमनशाह गाँव में जन्म लेकर इस धरा और मानवता को कृतार्थ किया। अठारहवीं शताब्दी के परमसिद्ध बालयति, उदासीन संत बाबा भूमनशाहदेव (1687-1747) के पूर्ण संरक्षण, मार्गदर्शन और इच्छा के अनुसार ही इस महान आत्मा ने वर्तमान मानवी चोला और भौतिक परिस्थितियाँ स्वीकार कीं। अढ़ाई सौ वर्ष पूर्व हुये बाबाजी के साथ इनका जन्म-जन्मान्तरों का बड़ा ही रहस्यमय, गहरा और अलौकिक सम्बन्ध है। पूज्य स्वामीजी के ही शब्दों में, "बाबाजी ही

सब प्रकार से मेरे जीवन के आधार हैं। उनके बिना मेरा स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है—ऐसा बोध उन्हीं की कृपा से मुझे सदैव बना रहता है।" अपनी कठिन साधना, प्रयासों और सारी उपलब्धियों का पूर्ण श्रेय वे बाबाजी को ही देते हैं।

परमसंत बाबा भूमनशाहजी, जिनके नाम से उनकी लीला-स्थली का नाम भूमनशाह गांव पड़ गया, अठारहवीं शताब्दी के उन महान बालसिद्ध संतों में से एक थे जिन्होंने स्वयं एक आदर्श, नैतिक और भगवद्मय जीवन व्यतीत करते हुए अपना सारा समय दीन-दुखियों की सेवा करने तथा मोह-माया में सोये लोगों को जगा कर उन्हें प्रभु-स्मरण में लगाने हेतु समर्पित किया।

जन्म से ही अपने प्रेमास्पद बाबाजी के प्रति अलौकिक और गहनतम प्रेम की माधुर्यपूर्ण आभा में इनका जीवन पूर्ण संतुलित और सुगठित होकर अपने परमप्रिय लक्ष्य, 'परमात्मा का पूर्ण और समग्र अनुभव', की तैयारी करने

लगा। वस्तुतः बाल्यकाल से ही वे सहज रूप से घटने वाले अत्युच्च आध्यात्मिक अनुभवों के बीच ही पले और बड़े हुये। बचपन से ही वे आध्यात्मिक रूप से परिपक्व आत्मा थे तथा उन्हें समाधि-चेतना का आभास था। उनके उत्कट प्रभु-प्रेम के लिए कोई दुःखद घटना या सांसारिक अभाव कारण नहीं बना। उनका यह लक्ष्य तो इस दिशा में उनके द्वारा जन्म-जन्मान्तरों में की गयी साधना का सहज परिणाम था। निश्चय ही वे कई जन्मों के योगी हैं तथा पूरे लक्ष्य-बोध के साथ ही उन्होंने अपनी आध्यात्मिक यात्रा की पूर्णाहूति हेतु यह चोला धारण किया है। उनके सम्पर्क में आने वाले हम सभी का यह सहज-स्फूर्त विश्वास है कि वे अध्यात्म के शिखर पर पहुँचे हुए पूर्ण योगी और आत्मतृप्त परमसंत हैं।

सन् 1947 में बाबाजी की प्रत्यक्ष प्रेरणा से भूमनशाह डेरे के तत्कालीन पूजनीय महंत गिरधारीदासजी ने स्वामीजी को मात्र सत्रह वर्ष की आयु में मंत्र प्रदान करके उदासीन

पंथ में दीक्षित कर लिया था। यही था उनके जीवन का असली रूपान्तरण बिन्दु। इस दीक्षा ने मानो उन्हें उनके जीवन के सच्चे लक्ष्य के दर्शन करा दिये, अब तक प्रसुप्त एवं अस्पष्ट सी आध्यात्मिक अभीप्सा मानो जाग उठी, प्रभु-मिलन की तड़प-विरह मानो बाढ़ की तरह उमड़ पड़ी।

सन् 1953 में आपने महान् संत श्रीकृष्णदासजी उदासीन, जो श्रीचन्द्र-चिनार बड़ा उदासीन अखाड़ा, श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर) के महंत थे, से सन्यास का चोला ग्रहण किया तथा विधिवत रूप से उदासीन साधु हो गये। श्रीकृष्णदासजी के पार्थिव चोला छोड़ जाने के बाद, 11 अक्टूबर, 1994 को पूज्य श्रीचन्द्रस्वामीजी को पूरे संत समाज ने हरिद्वार में एक भव्य समारोह में उक्त सिद्धपीठ का अध्यक्ष घोषित किया एवं बनाया। तभी से आप इस पद को सुशोभित कर रहे हैं।

साधु बनने पर आपने कुछ समय पैदल हिमालय भ्रमण किया। फिर आप श्रीनगर (काश्मीर) में चारों ओर हिमाच्छादित पर्वतों तथा दूर-दूर तक फैले सुन्दर झीलों के जमघट के बीच स्थित नितान्त एकान्त और सुन्दर स्थल, हरि-पर्वत पर जा विराजे। यहीं से आपकी कठिन तपस्या-साधना का विधिवत आरम्भ हुआ। बाबाजी के दिव्य-संरक्षण में आप अपने अस्तित्व की गहराइयों में पूरे डूब गये। आपकी साधना के मुख्य अवलम्बन भगवन्नाम जाप, ध्यान, प्राणायाम की कुछ क्रियाएं, साक्षीभाव साधना तथा सर्वोपरि श्रीभगवान के प्रति अनन्य शरणागति का भाव था। सर्दियों में आप पहाड़ से नीचे उतर कर जम्मू में तवी नदी के पावन तट पर स्थित एक एकान्त गुफा में आ जाते थे। उसी गुफा में आपको उदासीन पंथ के आदि ऋषियों—सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार बन्धुओं के दर्शन हुए। इन ऋषियों ने स्वामीजी को एक विशेष मंत्र के जाप का आदेश दिया तथा फिर उन्हीं के दिशा-निर्देशों

में स्वामीजी ने लगातार एक हजार रात्रियों तक बिना किसी विक्षेप के उस मंत्र के जाप का अनुष्ठान किया। इसके अतिरिक्त साधना के आरम्भिक काल में ध्यान के समय आप को महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, गुरुनानक देवजी, आचार्य श्री श्रीचन्द्रजी, शेर पर सवार माँ दुर्गा, हनुमानजी, भगवान बुद्ध, भगवान ईसा मसीह, वनवासी भेष में भगवान राम, भगवान शिव, बाल भेष में भगवान कृष्ण आदि के भी दर्शन (visions) होते थे। भगवान बालकृष्ण के तो आप को दर्शन प्रायः होते ही रहते थे। उन्हें ग्रीस के रहस्यवादी संत हर्मिस ट्रैमेजिस्टस के तथा विश्व के अनेक अवतारों-संतों के भी दर्शन हुए।

धीरे-धीरे यह दर्शनादि होने बन्द हो गये तथा उच्च से उच्चतर अनुभूतियों की यात्रा करते-करते उन्हें अति दुर्लभ अपने वास्तविक स्वरूप का, अपने अजर-अमर कालातीत आत्मा का साक्षात्कार हो गया। तब आप मात्र

29 वर्ष के थे। तब तक आपके अद्‌भुत भगवद् ज्ञान-प्रेम तथा अति मनोरम दिव्य छवि तथा मृदु स्वभाव पर मुग्ध होकर सैकड़ों लोग आपके प्रेमी, सेवक, भक्त बन गये थे।

सन् 1961 में आप प्रभु-प्रेरणा से श्रीनगर-काश्मीर से आकर हरिद्वार में सप्त-सरोवर से कुछ दूरी पर गंगाजी की कई धाराओं से घिरे एक नितान्त अकेले और जंगली टापू में रहने लगे। यहाँ हिंसक और जंगली जानवरों से कितनी ही बार बाबा भूमनशाहजी ने आप की रक्षा की। उस स्थान पर आप प्रभु-कृपा के पूर्ण प्रकाश में 'आत्म-साक्षात्कार' की अति दुर्लभ अनुभूति से भी आगे अपने अंतिम पड़ाव की ओर चल पड़े किन्तु अब यह यात्रा दुर्गम पथ वाली और संघर्षों से भरी न थी। अब तो मानो यह दिन के प्रखर प्रकाश में राजपथ पर रथारूढ़ एक राजकुमार की अपने राजमहल लौटने की सहज यात्रा थी। और, श्रीहरि की अनन्त कृपा से उन्होंने मात्र 35 वर्षों की अल्पायु में अपना असली गन्तव्य पा लिया। वे

कृतकृत्य हो गये, जन्मों-जन्मों की यात्रा की पूर्णाहूति हुई। उन्होंने निष्क्रिय, शान्त, साक्षी आत्मा तथा सार्वभौमिक भागवती शक्ति के बीच, और निर्गुण, निराकार सर्वातीत ब्रह्म तथा सर्वव्यापी, सर्वाधार, सगुण साकार ब्रह्म के मध्य पूर्ण सामन्जस्य का अनुभव कर लिया। परब्रह्म के विरोधाभासी प्रतीत होने वाले विभिन्न आयाम उनके लिये सहज रूप से समन्वित हो गये, माया का सम्मोहन सदा-सदा के लिये टूट गया और परम सत्य का यह समग्र अनुभव उनके अस्तित्व में सदा-सदा के लिए आत्मसात् होकर स्थायी हो गया। तभी से निरन्तर श्रीभगवान में स्थित, पूर्णतया भगवदेच्छा द्वारा ही संचालित होकर वे दिव्य अन्तर्प्रेरणा (intuition) से हमें अपनी दिव्य-लीला का रसास्वादन करा रहे हैं।

कोई नौ वर्ष गंगाजी के तट पर इस जंगली टापू में पूर्ण एकान्तवास करने के बाद सन् 1970 में गंगाजी में बाढ़ आ जाने पर सेवकों के अनुरोध पर आप सप्त-सरोवर

में आ गये तथा वहाँ आपके सेवकों द्वारा आपके लिये बनाए गये एक छोटे से आवास 'सेवक-निवास' (सीकर्स ट्रस्ट द्वारा स्थापित) में आ विराजे। यहाँ आप आत्माराम होकर प्रायः सभी समय मौन तथा एकान्त में रहते हुये, सन् 1990 तक इस स्थान को सुशोभित करते रहे।

आपके अरण्यवास तथा सेवक-निवास में वास के दौरान सच्चे अध्यात्म प्रेमियों का खिंच कर आपके पास आना जारी रहा। आपने स्वयं तो कभी भी अपनी प्रसिद्धि-प्रचार आदि की ओर ध्यान नहीं दिया। किन्तु जो भी सहज में आप के पास गया उसे प्रेम-पूर्वक अपना कर उसकी हर प्रकार से मदद की व उसका जीवन ही पावन कर दिया। वे अपने भक्तों/शिष्यों के परमप्रिय और सर्वस्व हैं। भक्त उन्हें आपने माता-पिता से भी अधिक हितैषी और सुहृद समझते हैं।

समय के साथ-साथ, किसी समय शांत सप्त-सरोवर, हरिद्वार में यात्रियों की बहुत भीड़ और व्यवसायीकरण

होने लगा। इस कारण वह स्थान स्वामीजी के पास आने वाले साधकों की साधना के अनुकूल नहीं रहा। अतः स्वामीजी की ही प्रेरणा और देख-रेख में सीकर्स ट्रस्ट ने सप्त-सरोवर स्थित सेवक-निवास को बेच कर जिला देहरादून में पवित्र यमुनाजी के तट पर, तीन ओर हिमालय श्रृंखलाओं से घिरे एक छोटे से एकान्त और सुरम्य स्थल, डुमेट-बाड़वाला गाँव में, साधना केन्द्र आश्रम बनवाया। सन् 1990 में पूज्य स्वामीजी अपने कुछ भक्तों के साथ हरिद्वार से यहाँ आ गये थे। यहाँ पूरे वर्ष भर सतत् रूप से बिना किसी प्रचार-प्रसार के पूज्य स्वामीजी के अलौकिक संरक्षण तथा मार्गदर्शन में देश-विदेश से, बिना किसी भेद-भाव के, सभी मतों, धर्मों और वर्गों के सैकड़ों साधक, भजन-साधन करके प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। पूज्य स्वामीजी की अलौकिक उपस्थिति ने आश्रम को एक अनूठी तपःस्थली बना दिया है।

कुछ वर्ष पहले महाराजजी के जम्मू-काश्मीर के भक्तों ने जम्मू में तवी नदी के तट पर स्थित उस गुफा का जीर्णोद्धार किया है जहाँ 50 वर्ष पूर्व महाराजजी ने कठिन तप किया था। गुफा के साथ ही, भक्तों ने कठिन परिश्रम करके तवी के तट पर 'श्रीचन्द्र गुफा साधना मंदिर' के नाम से एक सुन्दर आश्रम भी बना दिया है। अतः कुछ वर्षों से भक्तों के अनुरोध पर आप वहाँ भी जाते रहते हैं। वर्तमान में दिनांक 01.05.2002 से 30.06.2002 तक वहाँ आश्रम के एक कमरे में रह कर आपने अदर्श मौन रखा हुआ है। अदर्श मौन—अर्थात पूर्ण मौन के साथ-साथ किसी से भी मिलना-जुलना, लिखना आदि भी नहीं।

पिछले कुछ वर्षों से आप जम्मू इस कारण से भी अधिक जाते हैं कि श्रीनगर (काश्मीर) में स्थित श्रीचन्द्र चिनार आश्रम (जिसका पहले भी उल्लेख हुआ है) ने जम्मू में, "आचार्य श्रीचन्द्र कॉलेज ऑफ मैडीकल साइंसेज़

एंड हॉस्पिटल" के नाम से एक विशाल संस्थान स्थापित किया है। आप इस संस्थान के अध्यक्ष हैं। अतः संस्थान के महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए आपको जम्मू आने की विनती की जाती है।

स्वामीजी अपने विदेशी शिष्यों के बहुत अनुरोध पर विदेशों में भी थोड़े-थोड़े समय के लिए गये हैं तथा उन्होंने 14-15 देशों की यात्रा की है। वहाँ इनकी दिव्य, सौम्य और भव्य मूर्ति ने अगणित लोगों को एक सच्चे संत और समर्थ सद्गुरु के रूप में प्रभावित किया है।

कुछ वर्षों पहिले न्यूयार्क, अमरीका से छपने वाली प्रख्यात पत्रिका 'लाईफ' ने सभी देशों और धर्मों के आध्यात्मिक महापुरुषों का, एक टीम द्वारा सर्वेक्षण करवाया था। इसके परिणाम स्वरूप पत्रिका के दिसम्बर, 1991 के अंक में 'Men of God' शीर्षक से विश्व के प्रमुख संतों तथा धर्मगुरुओं का परिचय प्रकाशित किया गया था। इस परिचय में तिब्बती धर्मगुरु पूज्य दलाईलामा, पूज्य पोप

जॉन पॉल द्वितीय तथा इजिप्ट, जापान, नार्वे, इंग्लैंड व इज़राइल के अन्य धर्मगुरुओं के साथ-साथ हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि तथा सच्चे आध्यात्मिक महापुरुष के रूप में पूज्य स्वामीजी के परिचय सहित उनकी भव्य तस्वीर छापी गयी थी।

पूज्य स्वामीजी का व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य और छवि अति मनोरम है। सात्विक सौन्दर्य, रूप-लावण्य और भगवत्ता मानो उनके अंग-प्रत्यंग से फूटी पड़ती है। सुगठित, लम्बा-चौड़ा किन्तु बहुत सुकोमल और मनमोहक व्यक्तित्व, गेरुए रंग का चरण-कमलों तक लटकता ढीला-ढाला चोगा, पुष्ट स्कन्धों तक लटकते उनके रेशम से मुलायम श्वेत केश, लम्बी स्वच्छ शुभ्र घनी दाढ़ी, चमकीला चौड़ा प्रशस्त ललाट, दिव्य आनन्द, कोमलता और नम्रता उड़ेलती उनकी वे चमकीली और सुन्दर ध्यानी आंखें, सुन्दर नासिका, भक्तों का हृदय चुरा लेने वाली उनके सुकोमल होठों पर सदा बसने वाली वह

मन्द-मन्द, मीठी निर्मल मुस्कान, तपाये हुए सुवर्ण की तरह लालिमा मिश्रित उनके चेहरे की कान्ति तथा योग की आभा, भगवद्प्रेम, करुणा, सौम्यता और नम्रता से नहाया उनका वह शान्त, रक्ताभ चेहरा और सर्वोपरि, उनके मुख मण्डल पर सदा निवास करने वाली अजीब सी वह बेपरवाही और निःसंगता, मानो वे हर पल किसी दूर देश के वासी भी हों। उनके अपार्थिव सौन्दर्य और अनन्त गुणों का वर्णन कैसे करें? उनके दर्शन मात्रा से ही व्यक्ति आस्तिक हो जाते हैं। उनका दिव्य आकर्षण सदा ही नित-नूतन बना रहता है। उनका दर्शन करते कोई थकता नहीं। कितने ही भक्त उनके बार-बार दर्शन करके भी बार-बार अवाक् रह जाते हैं।

उनकी चाल व हाव-भाव में सम्राटों की सी भव्यता व शालीनता है। उनका व्यवहार और बाह्य चेष्टाएं बड़ी ही संतुलित, मर्यादित, सुरुचिपूर्ण और संगीतमय हैं। वे बड़े मेहमान-नवाज़ और छोटे-बड़े सभी का सम्मान करने

वाले हैं। वे परम क्षमाशील और दयावान हैं। वे बड़े ही संकोची तथा किसी भी वस्तु या स्थिति में दावा तथा अधिकार न रखने वाली वृत्ति के हैं।

आप अपने भक्तों के साथ ही नियमित रूप से खेलते, व्यायाम करते तथा भोजन आदि करते हैं तथा सभी के साथ नियमित रूप से सामूहिक साधन-भजन में भी बैठते हैं। आप की दिव्य दृष्टि में कोई जात-पात, धर्म, मत-मतान्तर, छोटे-बड़े का भेद नहीं है। आप की दैनिक-चर्या, खान-पान, निद्रा, आहार-विहार—सभी कुछ संतुलित और सम्यक् है। आप बहुत विनोद प्रिय तथा बालवत् सरल हैं। सभी के साथ आपका व्यवहार मित्रों का सा सरल तथा अनौपचारिकता लिये होता है। इतना महान होने तथा हजारों लोगों का आराध्य होने के बावजूद आपमें लेशमात्र भी अभिमान नहीं है।

दिनाँक 15 अक्टूबर, 1984 को साक्षात् भगवद्प्रेरणा से वे अनिश्चित काल के लिए पूर्ण मौन हो गये थे और

तब से ही उनका यह लम्बा मौन अखण्ड रूप से जारी है। लेकिन शायद अपने मौन द्वारा वे सच्चे साधकों/जिज्ञासुओं के साथ अपनी वाणी की अपेक्षा अधिक सशक्त रूप से संवाद कर रहे हैं, उन्हें जीवन्त दान दे रहे हैं। सुगंध की तरह वे आश्रम के कण-कण और प्रत्येक भक्त के हृदय में बसे हुए हैं। जब वे बोला करते थे तो उनकी वाणी भी बड़ी सारगर्भित, मधुर और रसपूर्ण थी। समझ नहीं आता कि उनकी वाणी ज्यादा मुखर थी या यह मौन! वे हंसते हैं तो जैसे सतरंगी फूल झड़े हों!

इस मौन की अवधि में वे भक्तों की शंका निवारण लिख कर करते हैं। उनकी लेखनी, सटीक, पैनी, सारगर्भित, संक्षिप्त, सरल, संतुलित और बड़ी ही प्रभावशाली होती है। आपका हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू तथा गुरुमुखी भाषाओं पर अच्छा अधिकार है।

निन्दा-स्तुति, हानि-लाभ, जीवन-मरण, आकर्षण-विकर्षण, दुःख-सुख, योग-वियोग, रोग-निरोग और सभी

द्वन्द्वों से परे उनका जीवन एक समभाव में स्थित है। आप को कभी किसी ने क्रोध करते नहीं देखा। कोई भी परिस्थिति आपकी सौम्यता, संतुलन और स्थिरता में क्षोभ नहीं डाल पाती। सदा ही अपने अस्तित्व के सच्चे केन्द्र में निवास करने के कारण आप प्रत्येक स्थिति में हमेशा भरे-पूरे दिखायी देते हैं। लेकिन समभाव में स्थित होने का अर्थ यह नहीं कि आप लापरवाह हैं या कार्यकुशल नहीं हैं। आप जैसा व्यवहारकुशल और व्यावहारिक ज्ञान वाला व्यक्ति शायद ही कोई होगा। आपको अपने सूक्ष्म निरीक्षण, अद्भुत सीखने की कला तथा प्रयोगात्मक वृत्ति के कारण भवन-निर्माण, पाकशाला, बिजली-पानी, साफ-सफाई, गृह-व्यवस्था, साज-सज्जा, पशुपालन, बही-खाते, कार्यालय-कार्य तथा व्यावहारिक रूप से सभी उपयोगी विषयों का बहुत अच्छा ज्ञान है। आप एक बहुत कुशल प्रबन्धक तथा प्रशासक भी हैं।

अध्यात्म जैसे गूढ़ और असीमित विषय के तो आप सहज सम्राट हैं। इस विषय का कोई भी आयाम आप से अछूता नहीं। साधना काल की सभी बारीकियों से आप स्वानुभव द्वारा पूर्ण परिचित हैं। विश्व की सभी प्रमुख साधन-ध्यान विधियों का आपको अधिकारपूर्ण ज्ञान है। आप एक सच्चे सद्‌गुरु की तरह व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक साधक की भिन्न-भिन्न प्रकार से मदद व मार्गदर्शन करते हैं। आप कोई चमत्कार, तमाशे तथा शक्ति प्रदर्शन नहीं करते अपितु विशुद्ध आध्यात्मिकता की शिक्षा देते हैं। किन्तु हमें इससे बड़ा और कोई चमत्कार नहीं लगता कि आप इस दुर्जेय, अतिचंचल तथा कठिन मन के पूरे स्वामी हैं। एक मालिक की तरह आप अपने मन का उपयोग करते हैं, मन को अपना उपयोग नहीं करने देते। इसीलिये मनोविज्ञान जैसे गूढ़ विषय पर भी आपका असाधारण प्रभुत्व है। आपका सद्‌शास्त्रों का एवं अन्य पुस्तकीय ज्ञान भी असाधारण है।

अध्यात्म में आप अद्भुत रूप से समन्वय स्वरूप हैं। इसीलिये भगवान में जन्मजात श्रद्धाजनित विश्वास रखने वाली अनपढ़ ग्रामीण वृद्ध माता को भी आप उतने ही प्रिय हैं जितने कि किसी शिक्षा सम्पन्न, संशयवादी पाश्चात्य आलोचक को। दरअसल आपका दिव्य आकर्षण व्यक्ति के मूल्यों, आस्थाओं, सामाजिक परिवेश, शिक्षा आदि पर निर्भर नहीं करता, वह तो पूर्वनिर्मित संस्कारों के घेरे को तोड़ कर व्यक्ति के हृदय तक पहुँच जाता है। आपके करुणा मिश्रित संतुलित और वैज्ञानिक जीवन-दर्शन के कारण विदेशी साधक सदा ही आप पर मुग्ध रहते हैं। कोई-कोई तो इन्हें देख कर कहते हैं, "ये मुझे मेरी मां लगते हैं। .... वे आते हैं तो जैसे सूर्य आ रहा हो। .... आदि, आदि।" निश्चय ही वे पूर्व और पश्चिम का सर्वोत्तम संगम हैं। उनके गुणों का तो अन्त नहीं है और समय तथा स्थान की मर्यादा है। अतः अनन्त विस्तार वाले उनके पावन चरित्र को हम यहीं विश्राम देते

हैं। इस जीवनी के सम्बन्ध में ऋण मोचन स्वरूप आभार व्यक्त करने हैं। इस जीवन कथामृत के बहुत से तथ्यात्मक अंश पूज्य स्वामीजी के प्रिय फ्रांसीसी शिष्य, दिवंगत पूज्य श्रीआनन्दजी (Yvan Amar) द्वारा लिखित स्वामीजी की जीवनी से लिये गये हैं। पूज्य श्रीआनन्दजी अल्पायु में सन् 1969 में पूज्य गुरुदेव (स्वामीजी) के पास आए थे तथा अपनी असाधारण लगन तथा साधना से शीघ्र ही स्वामीजी के बहुत आत्मीय एवं प्रिय बन गये थे। पूज्य स्वामीजी ने तो जीवन में कभी भी किसी से अपने बारे में किसी तरह की चर्चा नहीं की, बल्कि उससे बचते ही रहे। आनन्दजी अपनी घनिष्ठता के कारण उनसे खोद-खोद कर जो भी थोड़ा कुछ जान सके उसे उन्होंने नोट कर लिया। उसी के आधार पर उन्होंने स्वामीजी का संक्षिप्त जीवन-चरित्र लिख दिया। अतः पूज्य स्वामीजी का भक्त वृन्द पूज्य श्रीआनन्दजी का उनकी इस अमूल्य भेंट के लिये सदैव-सदैव ऋणी रहेगा। पूज्य श्रीआनन्दजी उच्च आध्यात्मिक अनुभूति

सम्पन्न विभूति थे। दिनांक 16.6.98 को एक लम्बी असाध्य बीमारी के बाद उन्होंने अपना पार्थिव चोला त्याग दिया था। वे फ्रांस के ख्याति प्राप्त आध्यात्मिक गुरुओं में से एक थे। फ्रांस में विभिन्न मतों के सैकड़ों लोग उनके प्रवचन तथा सत्संग सुनने आते थे। उनके प्रति भी बार-बार प्रणाम।

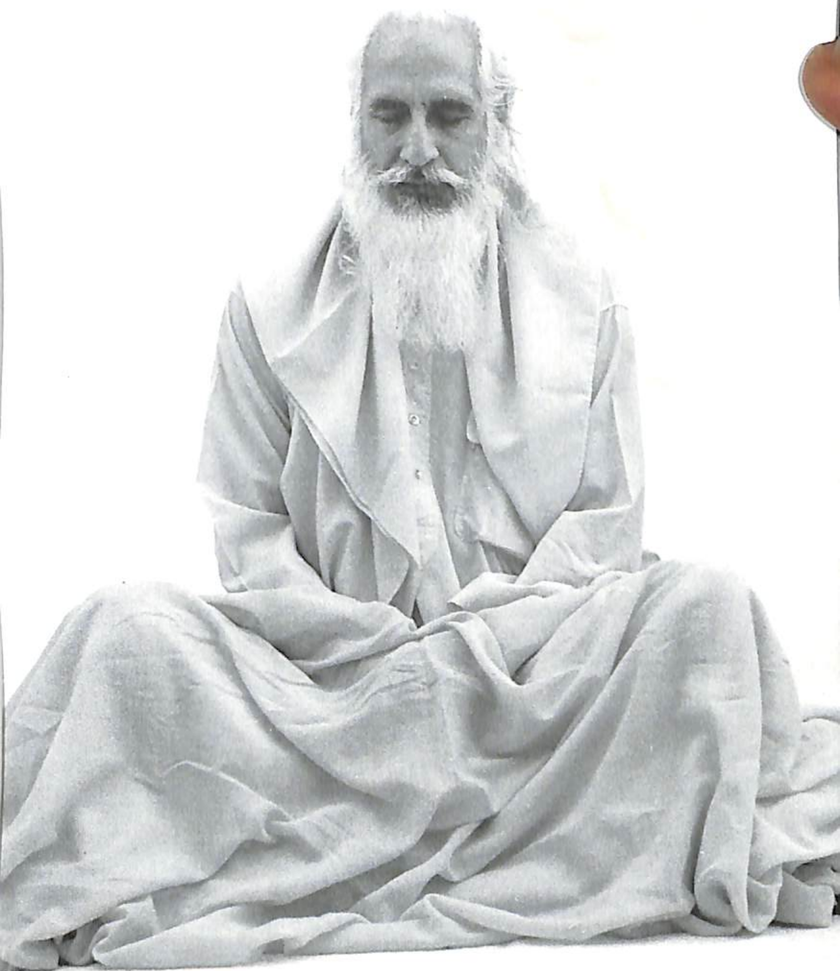
प्रस्तुत पुस्तिका में पूज्य गुरुदेव द्वारा लिखित 'सहज उपदेश माला भाग-1 तथा भाग-2' और तीसरी कृति 'प्रेरणा शतक' को वर्तमान पुस्तिका 'दिव्य-स्फुरण' में एकत्र कर संकलित किया है। इसमें कुल 316 सारगर्भित सूत्र संकलित हैं जो पूज्य गुरुदेव ने अपने भक्तों के अनुरोध पर 1966-67 के आस-पास, सप्तसरोवर, हरिद्वार के निकट 'झाड़ी' में अपने अरण्यवास की अवधि में लिखे थे। इन सूत्रों को महाराजजी के परम भक्त, परम आदरणीय श्री योगप्रेमानन्दजी वानप्रस्थी (पूर्व नाम श्रीमोहनलालजी अरोड़ा) ने सर्वहित की दृष्टि से संकलित

किया था। सहज उपदेश माला, भाग-1 व भाग-2 की प्रथम आवृत्तियां सन् 1969-70 के आस-पास प्रकाशित हुई थीं। प्रत्येक पुस्तिका में 108-108 सूत्र थे। प्रेरणा शतक के नाम से तीसरी पुस्तिका कुछ समय बाद प्रकाशित हुई थी। इसमें 100 सूत्र थे। बाद में भक्तों ने इन्हें पुनः पुनः प्रकाशित कराया था। क्रमशः इनके अंग्रेजी व फ्रेंच भाषाओं में अनुवाद भी हुए। पूज्य सद्‌गुरुदेव के सूत्ररूप दिव्यज्योति स्फुलिंगों में विश्वके सभी सद्‌शास्त्रों, अवतारों व संतों की वाणियों का सार है। रूढ़ियों और आडम्बरों से परे इनके द्वारा गुरुदेव महाराजजी ने हमें सच्ची आध्यात्मिकता का खज़ाना अपने विशुद्ध तथा अत्यन्त सरल रूप में दे दिया है। इन सूत्रों में केवल अध्यात्म पर ही नहीं बल्कि वैयक्तिक, पारिवारिक व सामाजिक कर्त्तव्यों-मूल्यों तथा नैतिकता, सदाचार, शिष्टाचार, आत्मानुशासन, सम्यक् युक्तियुक्त व्यवहार आदि विषयों पर भी अमूल्य दिशा-निर्देश हैं। उनकी पूरी की पूरी मीठी

वाणी शुद्ध रूप से आध्यात्मिक तो है ही, साथ ही व्यावहारिक भी है। उनके शब्द दिव्य संगीत हैं; महान काव्य हैं; परम रहस्य को अनावृत करने वाले युक्तियुक्त परम विज्ञान हैं; ऊषःकाल की ओस की तरह ताज़गी लिए हैं; माता की भांति हितकारी हैं; बालक की तरह निपट सरल हैं; सागर की भांति गम्भीर अर्थ वाले हैं; परमजीवन के प्रति मधुर आवाह्न व आश्वासन हैं; एक करुणावान ऋषि का प्रेमपूर्ण प्रसाद है। ये मात्र शब्द नहीं, बल्कि एक ब्रह्मनिष्ठ योगी की पूर्ण और समग्र भगवदानुभूति की सुगंध का, अभिव्यक्ति के राज्य में विस्तार है। उनके शब्द जीवंत हैं यदि हम उनके प्रति पर्याप्त ग्राह्यशील और खुले हुए हों तो। उनके इस महादान के लिये उनके प्रति बार-बार प्रणाम्।

24 जुलाई 2002 — सेवक

गुरुपूर्णिमा — स्वामी प्रेम विवेकानंद



दिव्य-स्फुरण

- यदि कोई कहता है कि परमात्मा बस यही है अथवा इतना ही है, तो निस्संदेह यह समझ लीजिए कि उसे परमात्मा के सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ जानना बाकी है।

- सब कुछ भगवान का है;
  सब कुछ भगवान के लिए है;
  सब कुछ भगवान् से है;
  सब कुछ भगवान् में है;
  सब भगवान् ही है;

  इनमें से किसी एक सत्य को भी जब आपकी चेतना पूरी तरह आत्मसात् कर लेगी तो आप की जीवन-नैया अवश्यमेव पार लग जायेगी।

- हम भगवान से आये हैं, यहां हमें भगवान् की सत्य प्रतिमूर्ति के रूप में अपने आप को ढालना है और अन्ततोगत्वा भगवान् में ही हमें जा मिलना है—इससे अधिक ऊंचा आदर्श और यथार्थ सिद्धान्त मुझे ज्ञात नहीं है।

- 'वह' प्यारा जब कभी 'प्रेम भरे क्रोध' में आकर थोड़ी सी भौहें टेढ़ी करता है, तो सारा विश्व उसके भय से काँपने लगता है—यह 'उसकी', 'उसके अनन्त ऐश्वर्य की' महिमा है, परन्तु 'वह' अन्दर से कितना मधुर और शीतल है, यह जानना मनीषियों की बुद्धि से परे की बात है तथा न ही यह रहस्य योगियों की प्रेम-शून्य एकाग्रता में खुलता है। उस अतिशय मधुरता, शीतलता और आनन्द का रसास्वादन तो प्रेमरत अनन्य भक्तजन ही कर पाते हैं।

- इन्द्रियों के माध्यम से सांसारिक वस्तुओं, घटनाओं और प्राणियों का बाह्य परिचय पाकर हमारा भौतिक मन दुःखी अथवा सुखी हुआ करता है, परन्तु अन्तर्प्रज्ञा जब खुलती है तो हमें सबके अन्दर और सबके पीछे एक महान् दिव्य शाश्वत सत्ता की उपस्थिति का अनुभव होने लगता है। तब हम सचमुच 'जीने' लगते हैं।

- ज्ञान से गम्भीरता आती है और प्रेम से मधुरता, परन्तु पुरुषोत्तम-चेतना का संस्पर्श प्राप्त होने पर जीवन, मधुरता और गम्भीरता दोनों से छका रहता है।

- सहज प्रवृत्ति में कर्म का अभिमान नहीं रहता और सहज निवृत्ति में त्याग का अभिमान नहीं रहता। अहंभावापन्न चेतना अपनी क्षुद्र अहंता से मुँह मोड़ कर जब तक विश्व-चैतन्य तथा विश्वातीत चैतन्य के सम्मुख नहीं होती तब तक न प्रवृत्ति ही सहज बनती है और न निवृत्ति ही सहज होती है।

- काल की विडम्बना (vanity) से छुटकारा पाने के लिये समस्त प्रकृति उग्ररूप से प्रयत्नशील है, और आप क्या सोए ही रहेंगे?

- भगवान् क्या हैं और कैसे हैं—यह पता ठीक तभी चलता है जब 'वे' मिल जाते हैं। आत्मा क्या और कैसी है—यह यथार्थतः तभी जाना जायगा जब आत्म-साक्षात्कार होगा। भगवत्-प्राप्ति अथवा आत्म-साक्षात्कार से पहले परमात्मा अथवा आत्मा के सम्बन्ध में जो कुछ भी सोचा जाता है, वह सब व्यक्ति की मानसिक कृतियाँ, विश्वास और अनुमान ही है अथवा प्रमाण मात्र।

- शरीर, इन्द्रियों तथा मन को तुच्छ तथा मिथ्या मानकर सदैव उनका तिरस्कार करते रहना साधना के लिए हितकर नहीं होता। सेवक से सेवक का काम लेना चाहिए। गलती तो उसका दास बन जाने में ही है।

- परमात्मा को शीघ्रातिशीघ्र कौन पा सकता है?—वह, जिसका शरीर स्वस्थ और निरोग है, जिसका मन शान्त और पवित्र है, जिसकी बुद्धि सुस्पष्ट और व्यवसायात्मिका है।

- सारा नामरूप जगत् जिस (परमात्मा) की ज्योति को, जिसके आनन्द को अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा, उसे किसी विशेष प्राणि-पदार्थ में ही सीमित मान बैठना तो बड़ी संकुचित दृष्टि है।

- भगवान् को अवश्यमेव पाना है और बस इसी जन्म में पाना है, उन्हीं के लिए जीऊंगा और उन्हीं के लिए मरूँगा—ऐसी दृढ़ धारणा जिसकी बन गयी उसका कल्याण होने में संदेह को स्थान ही नहीं है।

- रागद्वेष-लिप्त इन्द्रियाँ संसार को जैसा, जिस रूप में दिखाती हैं, वस्तुतः संसार वैसा नहीं है। निराशावादियों

को यह अन्धकारमय और दोषपूर्ण दीखता है, साधकों को यही शिक्षालय और विकास करने का अनुपम क्षेत्र प्रतीत होता है, और सिद्ध महापुरुषों को 'अनन्त' की लीला-स्थली।

- 'निर्बलताएं प्रत्येक मनुष्य में होती हैं'—इस उक्ति का बहाना बनाकर अपनी निर्बलताओं का समर्थन करना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। यदि आप विचार-विवेक के बल पर अपनी कमजोरियों को दूर नहीं कर सकते तो उन्हें प्रभु के सम्मुख रख कर सहायता के लिये 'उन्हें' पुकारिए। 'वे' आपकी समस्त त्रुटियों को पूर्णता में बदल देंगे।

- आप पूछते हैं प्रभु-प्राप्ति का सुगम मार्ग बताइए; परन्तु वह मार्ग यदि कठिन होगा तो क्या आप उस पर नहीं चलेंगे? पहले अपने हृदय को टटोल कर देखिए—आप सुगमता को चाहते हैं अथवा भगवान् को?

● जगत् में स्थान-स्थान पर 'फिसलन' देखकर मैं बहुत घबराया, परन्तु जब मुझे पता चला कि भगवान् ने मेरा हाथ पकड़ रखा है तो मेरी सारी चिन्ता दूर हो गयी।

● माया की प्रबलता को देखकर अपनी आध्यात्मिक सफलता में संशय न करिए। तुम्हारा ईश्वर माया से भी अधिक बलवान् एवं शक्तिशाली है।

● महत्व इस बात का नहीं कि आप अद्वैतवाद को मानते हैं अथवा द्वैतवाद को। महत्व तो इस बात का है कि आत्मिक दिव्य आनन्द, ज्ञान, प्रकाश एवं प्रेम आपके अन्दर कहाँ तक और कितने अभिव्यक्त हैं।

● 'स्व' न संग्रह से भरता है और न त्याग से ही। मैंने यह संग्रह कर लिया और यह संग्रह करना अभी बाकी है, मैंने इतना त्याग कर लिया और इतना त्याग अभी और करना है—यह सभी क्षुद्र अहंकार की भावनाएं

हैं। अवस्थाएं सभी छोटी हैं और 'स्व' बड़ा है। 'स्व' की परितृप्ति स्वानुभव से ही होती है।

- आत्मा आप में नहीं है, आप आत्मा ही हैं। अपने आप को क्षुद्र देह मान-कह कर आत्मा का अपमान न करिए।

- आपके प्रति कहे गये कटु वचनों से यदि आप दुःखी हो जाते हैं, तो आपके सुख का आधार ही क्या हुआ? तब तो एक साधारण से साधारण व्यक्ति भी आप को दुःखी बना सकता है।

- भगवान् ने यह सृष्टि क्यों बनाई? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने में समय विनष्ट न करिए। इस प्रश्न का पूरा समाधान तभी होगा जब आपको भगवत् अनुभव होगा। भगवत् अनुभूति के लिए साधना कीजिए।

● किसी पदार्थ-परिस्थिति की इच्छा करना अथवा उसके पीछे भागना वस्तुतः अपना मूल्य घटाना है। आत्म-सम्मान की भावना रखने वाले व्यक्ति को क्या यह शोभा देता है कि वह किसी वस्तु की चाह करे अथवा उसके पीछे भागे?

● भगवान् आप को कब मिलेंगे?—जब उनका वियोग आपसे एक क्षण के लिए भी सहन नहीं होगा। जब तक आप भगवान् की प्राप्ति के बिना जी सकते हैं तब तक भगवान् की प्राप्ति नहीं होगी। जब भगवान् के न मिलने के दुःख से आप का दम घुटने लगेगा तो समझिये प्रभु-मिलन का समय निकट है।

● यदि आप सच्चे अर्थों में आस्तिक हैं तो चिन्ता और भय आप के पास कभी फटक भी नहीं सकते।

- जो मनुष्य अविनाशी आत्मा को त्याग कर उसके बदले में नश्वर वस्तुओं को स्वीकार कर लेता है उसके पारमार्थिक दृष्टिकोण की तो बात ही रहने दीजिए उसका आर्थिक (economical) दृष्टिकोण भी सही नहीं है।

- भले ही मनुष्य आकाश में उड़ सके अथवा जल पर चल सके, परन्तु जब तक उसके चित्त में इच्छा, अंधकार और मोह की छाया बनी रहेगी, तब तक शान्ति उससे कोसों दूर रहेगी।

- मूर्ख लोग प्रतिवेदन करते और कहते हैं—"हाय! यह जगत परिवर्तनशील है।" परन्तु जरा सोचिए तो सही कि जगत् का परिवर्तनशील होना क्या बुरी बात है? परिवर्तन के बिना विकास ही कैसे संभव हो सकता है। परिवर्तन न होता तो चेतना पशु-पक्षी के स्तर से मनुष्य

के रूप में कैसे आती तथा मनुष्य से आगे दिव्य भाव को कैसे प्राप्त करती ?

- यदि आप यह स्वीकार करते हैं कि दृश्य और अदृश्य समस्त सृष्टि एक परात्पर महान चैतन्य-शक्ति के द्वारा रचित, नियन्त्रित और नियोजित है तो 'संयोग' नाम का शब्द अपने शब्दकोष से मिटा दीजिये।

- प्रभु-विस्मृति ही मृत्यु है और प्रभु-स्मृति-मय जीवन ही सच्चा जीवन है।

- जिसके प्रति राग होता है, उसके दोष छिप जाते हैं, गुण ही गुण दिखाई देते हैं। जिसके प्रति द्वेष की भावना हो जाती है, उसके गुण छिप जाते हैं, दोष ही दोष दिखाई देते हैं। जब तक किसी अन्तःकरण में राग-द्वेष भरा है, तब तक किसी साधारण वस्तु-व्यक्ति को भी यथावत् नहीं

जाना जा सकता, तब फिर भगवान्, जैसे कि वे अपने विशुद्ध स्वरूप में हैं, को तो जाना ही कैसे जा सकता है?

- आप की बुद्धि के विचार, हृदय का प्रेम और प्राण की आकाँक्षाएं जब सहज रूप से परमात्मा की ओर प्रवाहित होने लगेंगी तो आप के लिए संसार में दुःख नाम की कोई वस्तु नहीं रहेगी।

- एक बच्चा माँ का हाथ पकड़ कर चलता है और दूसरा बच्चा अपना हाथ माँ को पकड़ा कर चलता है। बताइए, दोनों में से अधिक सुरक्षित कौन है? निश्चय ही अपना हाथ माँ को, परात्पर प्रभु को, पकड़ा कर चलना अधिक श्रेयस्कर है।

- ज्ञान का वास्तविक अर्थ अनेक पदार्थों की जानकारी से अपने मस्तिष्क को भर लेना नहीं है। ज्ञान की सच्ची सार्थकता तो अनेकता के अन्दर एकता देखने में ही है।

- सुख और दुःख दोनों ही परम आनन्द के विकृत रूप हैं। अतएव दुःख और सुख दोनों के अन्दर ही भागवतीय परम आनन्द का संस्पर्श प्राप्त किया जा सकता है, अनेक महापुरुषों ने किया भी है।

- एक स्तर तक व्यक्ति के विकास के लिए दुःख, अन्धकार, मृत्यु, भय, सम्मान की इच्छा आदि उतने ही आवश्यक हैं जितने कि सुख, प्रकाश, जीवन और निर्भयता आदि। भगवान् की सृष्टि में कोई वस्तु अथवा शक्ति निष्प्रयोजन या व्यर्थ हो ही नहीं सकती।

- आत्मा, अनात्मा का भेद मन के स्तर तक ही है। मन के विलीन होने पर अथवा मन के परे चले जाने पर ऐसा कोई भेद नहीं रहता।

- अंधेरी कोठरी में बैठा एक मनुष्य कहता है— "बिजली प्रकाश स्वरूप है।" उसका यह कथन तो असत्य

नहीं है, परन्तु यह भी सत्य है कि वह स्वयं बिजली के प्रकाश से वंचित ही है। इसी प्रकार "आत्मा ज्ञान-स्वरूप एवं शान्ति-स्वरूप है"—यह कथन असत्य नहीं है, परन्तु आत्म-साक्षात्कार से रहित मनुष्य आत्म-शान्ति से वंचित ही रहता है, यह बात भी सत्य है।

● प्रभु-प्राप्ति में जो आनन्द है सो तो है ही, प्रभु की खोज में भी एक अलौकिक रस है। जिनका हृदय प्रभु-प्रेम में धड़कता रहता है, जिनकी अन्तःभावनायें प्रभु-मिलन के लिए उछलती रहती हैं और आंखें भीगी रहती हैं उनसे पूछिए कि इस अनुसंधान में क्या रस है?

● आप यदि सचमुच भगवान् के भक्त हैं तो उदासी, निराशा और शोकपूर्ण मुँह लेकर बाहर मत आइए, इससे भगवान् का नाम बदनाम होता है।

- जो मानव मनुष्यता को प्राप्त नहीं कर सकता, वह भगवान् को तो भला क्या ही प्राप्त करेगा?

- सावधान! विषयों के भोग से विषयों का चिन्तन अधिक अहितकर है। विषय भोग से तो रोग, दुःख और शक्ति-ह्रास ही हाथ लगेंगे, परन्तु विषय-चिन्तन से जटिल मनो-ग्रन्थियों का निर्माण होगा, विषय-संस्कारों के बीज बनेंगे और आत्म-स्वातंत्र्य की सम्भावना ही धुँधली पड़ जायेगी।

- अहंकार न तपस्या से जाता है और न ही त्याग से। अन्तर्मुखी एकाग्रता के द्वारा जब आप अपने समूचे व्यक्तित्व के पीछे उस गुप्तरूप से कार्य करती हुई परात्पर महाशक्ति, सारा विश्व जिसका एक सहज कर्म है, को देख लेते हैं, तो आपका अहंकार लज्जित हो कर अपने आप पीछे हट जाता है।

- शारीरिक उठक-बैठक अथवा नौलि-धौति आदि करने मात्र को ही योग नहीं कहते। योग उस दिव्य क्रिया का नाम है जो आत्मा और परमात्मा के अन्तर को मिटाती तथा साधक, साधन और साध्य को एक बना देती है।

- जब मन व प्राण चुप होते हैं तब आत्मा बोलती है।

- जीवन का उद्देश्य जीवन की निवृत्ति नहीं है और न ही हो सकता है, क्योंकि यह तो एक नग्न विपरीतता होगी। जीवन का सच्चा उद्देश्य है जीवन को दिव्य तथा पूर्ण बनाना।

- मन को जब तक अपने पास रखेंगे तब तक यह आपको नचाता ही रहेगा। यह भगवान् की वस्तु है, "प्रभो! यह तेरी वस्तु तेरे अर्पण", कह कर इसे भगवान्

के चरणों में रख दीजिये। 'वे' इसको स्वयं स्थिर और शान्त कर लेंगे।

- ध्यान-अभ्यास में यदि आपको पीले, लाल, हरे आदि रंग दिखते हैं अथवा कोई विचित्र शब्द सुनाई देते हैं तो झूठे गर्व से मत फूलिए, क्योंकि ये आध्यात्मिक प्रगति के वास्तविक चिन्ह नहीं हैं। हाँ, यदि आपके मन में शान्ति, निर्भयता, गम्भीरता, निश्चलता तथा बाह्य प्रभावों के प्रति असंगता आदि सद्गुण उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं तो समझिए कि आप प्रगति के पथ पर हैं।

- सुनिए! सांसारिक चिन्ता की गठरी का बोझा सिर पर रख कर अध्यात्म के शिखर पर आज तक कोई नहीं चढ़ सका।

- सत्ता एक है। दो अथवा अधिक सत्ताएं मान कर 'अनन्त' को सान्त होने का झूठा कलंक मत लगाइए।

● खेद है कि भगवान् के दरबार में इतना स्थान खाली है, परन्तु वहाँ बैठने वाला कोई नहीं !

● उधर भगवान् आपकी बाट जोह रहे हैं, और आप हैं कि इधर खिलौनों के साथ खेलने में लगे हैं।

● सच्चा धर्म वही है जो मनुष्य-मनुष्य के भेद को मिटा कर सब में प्रेम और मैत्री की भावना जाग्रत करे।

● जैसे-जैसे आत्म-दृष्टि का विस्तार होने लगता है वैसे-वैसे 'अन्दर' और 'बाहर' का अन्तर अवास्तविक प्रतीत होने लगता है। आत्मबोध की पराकाष्ठा में 'है' और 'हूँ' के भेद की भावना भी मिट जाती है।

● जगत् को मन की रचना कह कर उसका निषेध करना परोक्षरूप से जगत् को स्वीकार करना है। जितना मन सत्य है उतना जगत् भी सत्य है।

- भक्त वह है जो भगवान् के लिए जीता है और सांसारिक व्यक्ति वह, जो संसार के लिए।

- यदि मन ने ही जगत् की रचना की तो मन को किसने रचा?—मन स्वयं अविनाशी तो है ही नहीं! सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य को जब सत्य का प्रत्यक्ष नहीं होता तो वह किसी भी संकीर्ण सिद्धांत को पकड़ बैठता है।

- प्रतिक्रियावादी मनुष्य का मन ही स्वतन्त्र नहीं, उसका कर्म तो स्वतन्त्र बन ही कैसे सकता है?

- मित्रवर! क्या यह बात आपको हर समय याद रहती है कि आपके सभी प्रियतम सम्बन्धियों और वस्तुओं से आपका वियोग अवश्यमेव होना है तथा वह वियोग किसी क्षण भी घटित हो सकता है? यदि ऐसा है तो निश्चिन्त रहिए, सांसारिक आसक्ति का भूत आपको

अधिकृत नहीं कर सकता और न ही अन्तिम समय आपको कोई मानसिक कष्ट हो सकता है।

- अनन्त प्रभु की कृपा का पार नहीं है। जब हम सच्चे हृदय से प्रभु को पुकारते हैं तो उत्तर अवश्य मिलता है, जब 'उन्हें' देखने की सच्ची तड़प होती है तो 'दर्शन' अवश्यमेव होते हैं। कमी व देरी तो साधक की अपनी ओर से ही रहती है।

- मनुष्य की हृदय-ग्रन्थियों की, उसकी बुद्धि के अनेक प्रकार के सिद्धान्त-संस्कारों की जकड़ जैसे-जैसे ढीली पड़ती जाती है वैसे-वैसे सत्य उसके हृदय में प्रकट होता जाता है। आत्म-साक्षात्कार की आवश्यकता है तो अपने अन्तःकरण रूपी शीशे को साफ कीजिए।

- प्रत्येक पाप के लिए कोई प्रायश्चित होता है परन्तु समय की हत्या करना एक ऐसा पाप है जिसका कोई भी प्रायश्चित नहीं।

- कई बार साधक की दृढ़ 'आस्था' ही उसे 'अनुभूति' के रूप में प्रतीयमान होने लगती है। वस्तुतः 'आस्था' और 'अनुभूति' में उतना ही अन्तर है जितना जमीन और आसमान में।

- जो प्राणी इन्द्रियों में स्थित—वह पशु, जो मन में स्थित—वह मनुष्य और जो शान्त आत्मा में स्थित—वह संत है।

- आत्म-साक्षात्कार कोई मानसिक क्रिया नहीं है। यदि ऐसा होता तो कैवल्य की प्राप्ति के लिये चित्त-वृत्ति-निरोध की आवश्यकता नहीं होती।

- ईश्वर-प्राप्ति के लिए दो बातें सदैव अपेक्षित हैं—ईश्वर की ओर से सामान्यातीत कृपा और जीव की ओर से इस कृपा को आत्मसात् करने की योग्यता।

● जिसको अनुचित आशावादिता (undue optimism) का रोग लगा है उसको कुछ दिन तक किसी बड़े अस्पताल के सर्जिकल वार्ड (surgical ward) में ले जाइए अथवा किसी नगर के बड़े श्मशान-घाट की कुछ दिन निरन्तर सैर करवाइए। इससे उसकी 'बीमारी' में कुछ सुधार अवश्य होगा।

● हठयोग की किसी क्रिया से इन्द्रियों और मन-बुद्धि का गला घोंट कर इन्हें मारने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञात होना चाहिए कि प्रकृति माता ने अतिदीर्घ काल की साधना के अनन्तर आपके लिए इनका निर्माण किया है, ताकि इनको भगवान् के अभिमुख करते हुए इनका दिव्य रूपान्तर करके आप जीवन्मुक्ति का आनन्द-लाभ कर सकें।

● एकाग्रता और अन्तर्मुखता में विशेष अन्तर है। यह संभव है कि किसी व्यक्ति का मन अन्तर्मुख तो हो परन्तु

एकाग्र न हो, अथवा एकाग्र तो हो पर अन्तर्मुख न हो। आत्मोपलब्धि के लिये यह अनिवार्य है कि मन अन्तर्मुख भी हो और एकाग्र भी।

● जिस मनुष्य को किसी एक प्राणी-पदार्थ की भी अधीनता है वह सुखी नहीं बन सकता। परन्तु भोगी मनुष्य को तो तीन की अधीनता है—

(i) भोग्य पदार्थ की अधीनता। भोग्य पदार्थ का मिलना कर्म के अधीन है।

(ii) इन्द्रियों की अधीनता। इन्द्रियों में बल नहीं है तो भोग्य पदार्थ के उपस्थित होने पर भी उसे नहीं भोगा जा सकता।

(iii) मन की अधीनता। भोग्य पदार्थ भी हैं, उसे भोगने की शक्ति भी इन्द्रियों में है, परन्तु मन की स्थिति ठीक नहीं तो भी उसे भोगा नहीं जा सकता।

भावार्थ यह है कि जहां अनेक प्रकार से अधीनता ही अधीनता हो वहां सुख की कल्पना करना भी मूर्खता है।

- सब कुछ लुट जाने के बाद यदि नींद टूटी तो क्या लाभ? भोगों से अथवा बुढ़ापे में शरीर जर्जरीभूत हो जाने पर यदि संसार की निस्सारता का ज्ञान हुआ अथवा भगवान् को प्राप्त करने का शौक लगा तो क्या फायदा?

- विद्वता कुछ और चीज है, मनुष्यता कुछ और, परन्तु आध्यात्मिकता तो निस्संदेह दोनों से ही विलक्षण है।

- जैसे निवृत्ति साधना का क्षेत्र है वैसे ही प्रवृत्ति भी है। प्रवृत्ति को भोग का क्षेत्र अथवा साधन मानना ही भूल है। आप जहां कहीं भी हैं सत्य के साधक बन के रहिए, फिर देखिए आपके जीवन में कैसी दिव्यता आती है।

- याद रखिए! व्यक्ति के आन्तरिक आत्मिक जीवन और बाह्य व्यावहारिक जीवन में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्यावहारिक जीवन में पवित्रता और कुशलता आये बिना आध्यात्मिक जीवन का विकास संभव नहीं है।

● रूढ़िवादी मत बनिये। लकीर के फकीर रहने का समय अब नहीं रहा। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार जीवन की समस्याओं को विचारपूर्वक समझिए और प्रत्येक कार्य को ठीक ढंग से सम्पन्न कीजिए।

● सांसारिक लोगों की झूठी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए भगवान् को अप्रसन्न करना अलाभकारी सौदा ही नहीं अपितु निरी मूर्खता है।

● वैराग्य के नाम पर संसार से घृणा करना उचित नहीं है। घृणा व्यक्ति के लिए उतनी ही बन्धनकारी है जितने राग और आसक्ति। प्रत्येक वस्तु को यथा-योग्य स्थान, मूल्य और महत्व दीजिए। उसका वैसा ही उपयोग करना, जिसके लिए भगवान ने उसकी रचना की है, व्यावहारिक कुशलता है।

● सच्चा आध्यात्मिक विकास सदैव अन्दर से ही होता है। आध्यात्मिकता बाहर से किसी पर लादी नहीं जा सकती। आध्यात्मिक विकास का सबसे बड़ा शत्रु है परतन्त्रता का वातावरण।

● प्रभु-कृपा किन पर, कैसे, किन परिस्थितियों में तथा क्यों होती है, इस रहस्य को नहीं जाना जा सकता। तथाकथित पुण्यशील उससे वंचित देखे गये हैं और पापियों का बेड़ा उसका सद्लाभ करके पार हुआ है। परन्तु प्रभु-कृपा है और अवश्य होती है—इससे बड़ा सत्य मेरे लिए जगत् में नहीं है।

● गाड़ी चलती है, परन्तु उसे पता नहीं कि वह कहां और क्यों जा रही है। पशु जीता है, पर उसे ज्ञात नहीं कि वह क्यों और किसके लिए जीता है। जीवन का अर्थ तो चेतना को तभी प्राप्त होता है जब वह मनुष्य के स्तर पर आ जाती है। जिस मनुष्य के सामने जीवन का कोई

उच्च, जीवंत आदर्श नहीं है वह निश्चय ही मनुष्य रूप में पशु है।

- पावनी श्रद्धा के नाम पर युक्ति असंगत और न्याय विरुद्ध बातों और पद्धतियों को स्वीकार करना तथा उनका अनुसरण करना आत्मवंचना के सिवाय कुछ नहीं है।

- वस्तुओं का अभाव वैराग्य का सूचक नहीं है और न ही वस्तुओं की उपस्थिति आसक्ति का चिन्ह! वैराग्य और आसक्ति तो मन की अवस्थाएं हैं। प्रथमवर्ती है मोक्ष का सोपान और द्वितीयवर्ती है बन्धन का हेतु!

- शारीरिक सुखों की प्राप्ति अथवा मानसिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए भाग-दौड़ करने को पुरुषार्थ नहीं कहते। पुरुषार्थ, जैसा कि शब्दार्थ से निर्देशित है, उस प्रयास को कहते हैं जिसके द्वारा पुरुष (जीव) शरीर, इन्द्रियों तथा मन-बुद्धि की वर्तमान अधीनता से मुक्ति-लाभ कर सके।

● भगवत्प्राप्ति के लिए बाह्य त्याग अनिवार्य नहीं है, परन्तु बिना आन्तरिक त्याग के 'आत्म-स्वराज्य' में प्रवेश पाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है।

● आप कहते हैं आपका मन बड़ा चंचल है। परन्तु आप इसे आहार के रूप में देते क्या हैं? यह मत भूलिए कि अस्थिर जगत् के विचार-संकल्प देकर आप इसे स्थिर नहीं बना सकते। इसकी चंचलता उस आत्मा के चिन्तन-ध्यान से ही मिटेगी जो स्वयं स्थिर और अचंचल है।

● किसी गंतव्य स्थान पर पहुंचने के लिए तीन वस्तुओं की अपेक्षा रहती है—दृष्टि, लगन और चलने का बल। इसी प्रकार पुरुषोत्तम-भाव को चेतना में अभिव्यक्त करने के लिए ज्ञान, भक्ति और क्रियाशक्ति तीनों ही आवश्यक हैं।

● साधक होकर भी यदि आप दूसरों की निन्दा-आलोचना करते हैं तो आपके लिए बड़ी लज्जा की बात है। सच्चे साधक को तो भजन, हरि-चर्चा और सेवा से फुर्सत (अवकाश) ही नहीं मिलनी चाहिए।

● आध्यात्मिक साधना में ध्यान का स्थान निश्चय ही मुख्य है। ध्यान से मन ऊब जाये तो भगवद् नाम का जाप कीजिए। जाप से थकावट हो तो स्वाध्याय करिए। स्वाध्याय न बन पावे तो सत्संग में चले जाइए। यदि सत्संग में भी वृत्ति न ठहरे तो भगवत् नाते शारीरिक सेवा करिए। येन-केन-प्रकारेण आपका सम्पर्क हर समय भगवान् के साथ जुड़ा ही रहना चाहिए।

● धीर पुरुष कौन है?—वह जो प्रतिकूल परिस्थितियों में मन का संतुलन नहीं खो बैठता, प्रकृति के आघात जिसके चित्त को विचलित नहीं कर पाते, जो सदैव

सहजतापूर्वक, पर सावधानी से, अपने दिव्य गन्तव्य की ओर बढ़ता जाता है।

- वह प्रपंच जो एक दिन आपके चाहते अथवा न चाहते छूट ही जाना है, उसके लिए तो इतना मोह और परिश्रम, परन्तु जो जन्म-जन्म का नित्य साथी है, उस परमात्मा के प्रति इतना प्रमाद और उपेक्षा! दया करके अपने विवेक की इतनी दुर्दशा न कीजिए।

- भक्त दिखने से भक्त बनना अच्छा है, परन्तु भक्त बनने से भी अधिक अच्छा है भक्त होना।

- मनुष्य न पूर्णरूप से स्वतन्त्र है और न (पूर्णरूप से) परतन्त्र ही। अतएव जो लोग मनुष्य-जीवन की उपपत्ति केवल पुरुषार्थ के अथवा केवल प्रारब्ध के आधार पर लगाना चाहते हैं, वे असफल ही रहते हैं। सच्ची बात

तो यह है कि मनुष्य-जीवन रूपी गाड़ी पुरुषार्थ और प्रारब्ध दोनों ही पहियों पर चलती है।

● श्रद्धा तो धर्म का प्राण ही है। परन्तु धर्म में तर्क का भी अपना विशेष स्थान है। वह (तर्क) बहुत सी अन्धविश्वास-मूलक भ्रान्तियों (superstitions) का निराकरण करके धर्म को उज्जवल और सत्यग्राही बनाने में सहायक होता है।

● शास्त्र अनेक हैं और उनमें प्रत्येक के सिद्धान्त और धारणाएं भिन्न-भिन्न हैं। यदि आपको संशय-विपर्यय-रहित सच्चे ज्ञान की आकांक्षा है तो बाहर से मुड़ कर अन्दर आइए और अपने स्वरूपभूत उस असीम आत्म-स्रोत की खोज कीजिए जिसके कतिपय ज्ञान-बिन्दु ही सद्शास्त्रों के रूप में बिखरे हैं।

- अग्नि से यदि आप अपना हाथ जला बैठते हैं तो इसमें अग्नि का क्या अपराध? माया में यदि आप आसक्त होते हैं तो दोष आपका है अथवा माया का? यह सच है कि निर्बल व्यक्ति अपनी निर्बलता को छिपाने के लिये अपने दोष तथा अपनी बुराइयां दूसरों के माथे थोपने में बहुत चतुर होता है।

- सीधी सी बात है कि जिस कार्य को मनुष्य सबसे अधिक महत्व देता है, उसको सबसे पहले करता है। यदि आपने भगवान् अथवा भगवत्-प्राप्ति को सचमुच सर्वतोधिक महत्व दिया होता तो आपके जीवन में भजन-अभ्यास को अवश्यमेव मुख्य स्थान मिलता, तब आप बहानेबाजी करके भजन को भविष्य पर टालने का प्रमाद कदापि न करते।

- जो लोग मृत्यु को भूल कर केवल जीवन की ओर ही देखते रहते हैं वे प्रायः आशावादी बन जाते हैं। जो

जीवन से उपरत होकर केवल मृत्यु को ही देखते हैं वे निराशावादी बन जाते हैं परन्तु जो मनुष्य जीवन के साथ लगी मृत्यु को और मृत्यु के पीछे छिपे जीवन को एक साथ देखता है, वह यथार्थ दृष्टि पाकर अध्यात्मवाद का जिज्ञासु बनता है।

- हमारे पूर्वज ऐसे थे, वैसे थे—यह कहने मात्र से क्या लाभ? प्रश्न तो यह है कि हम क्या हैं? अपनी सद्‌भावनाओं, अपने उज्जवल कर्मों और अपने सुखकारी एवं हितकारी वचनों के जीवन्त उदाहरण द्वारा हमें यह प्रमाणित करना होगा कि हम उन आर्य महाऋषियों की सन्तानें हैं जिन्होंने सत्य का केवल साक्षात्कार ही नहीं किया अपितु उसे अपने व्यावहारिक जीवन में पूर्णरूप से उतारा भी है।

- भगवान् जिज्ञासु-भक्त से सर्वस्व मांगते हैं। यदि आपको पूर्णरूप से भगवान् को पाना है तो अपने आपको

पूर्णरूप से उन्हें देना होगा। यदि भगवान् को पूरी तरह अपना बनाना है तो आपको पूरी तरह 'उनका' बनना होगा। ऐसा क्यों है, यह भगवान् ही जानें, पर है सोलह आने ऐसा ही।

- परमात्मा का क्या बिगड़ता है यदि आप उसका स्मरण नहीं करते? यदि आप प्रभु से प्रार्थना अथवा उसकी स्तुति-वन्दना नहीं करते तो उसका क्या घट जाता है? होता वस्तुतः यही है कि परमात्मा से परांगमुख होने के कारण आप अपने आत्मोद्धार के उस स्वर्ण अवसर को खो बैठते हैं जो भगवान् ने आपको मनुष्य-जीवन देकर दिया है।

- मनुष्य सुरक्षा चाहता है, परन्तु अज्ञान-वशात् वह उसे संसार की वस्तुओं और व्यक्तियों में खोजता है। सोचने की बात है कि जो वस्तु-व्यक्ति स्वयं ही सुरक्षित

नहीं हैं अथवा अपनी सुरक्षा के लिए पराधीन हैं वे दूसरों की भला क्या रक्षा करेंगे।

- एक संकल्प के अस्त होने के बाद और दूसरे संकल्प के उदय होने से पूर्व बीच में एक निर्विकल्पता का 'क्षण' आता है। यदि आप किसी अभ्यास के द्वारा इस 'क्षण' को पकड़ सकते तो आपको तत्काल आत्म-साक्षात्कार हो जाता।

- वह ज्ञान जो व्यक्ति के हृदय को सरस नहीं बनाता, जो उसके जीवन में शन्ति का संचार नहीं करता, निर्जीव है, वह बंजर भूमि के समान है।

- कमरे में वस्तुएं कैसे भी क्रमरहित ढंग से रखी हों, परन्तु आपकी आंखें यदि खुली हैं तो आप बिना ठोकर खाए, बचकर निकल जाते हैं। दूसरी ओर, यदि आपके

नेत्र बन्द हैं तो कमरे में चाहे कैसे ही कुशल व्यवस्था से वस्तुएं सजाई गई हों, चलते समय आपका पाँव कहीं न कहीं टक्कर खा ही जाता है। इसी प्रकार सचेत, सजग साधक प्रतिकूल वातावरण में भी प्रभु-मिलन के पथ पर आगे बढ़ जाता है और असावधान साधक बाहर की सब व्यवस्था ठीक होने पर भी ठोकर खाता है।

- सावधान! प्रभु सर्व अन्तर्यामी हैं। वह आपके सब संकल्पों और भावनाओं को निरन्तर देखते रहते हैं। आपकी भक्ति-भावना में तनिक भी व्यभिचार आया तो वे पीछे हट जायेंगे और फिर उनको मनाना सहज नहीं होगा।

- लोग परम शक्तिमान तथा परम कल्याणकारी भगवान् को छोड़ कर अल्पज्ञ और स्वार्थी मनुष्य पर भरोसा करते हैं। परन्तु जब धोखा होता है तो भगवान् की रचना में

दोष निकालते हैं अथवा अपने भाग्य को बैठे कोसते हैं, मानो अपराध के ऊपर अपराध करते हैं।

● संसार में सत्य-उपदेश सुनने वालों की संख्या बड़ी है, और सत्य-उपदेश देने वाले भी उनसे कम नहीं हैं, पर सत्य पर चलने वाले मनुष्य बिरले ही होते हैं और धन्य है वे जिन्होंने सत्य को अपना जीवन ही बना लिया है। ऐसे सत्पुरुषों के लिये कोटिशः प्रणाम! देवगण भी उनके लिये 'साधुवाद, साधुवाद' कहकर अपनी शुभकामनायें प्रकट करते हैं।

● अनुकूलता-जन्य सुख और बोध-जन्य सुख में भला कैसी तुलना! पहले का आधार बाहर है और अस्थिर है; दूसरे का आधार अन्दर है और स्थिर है; पहले में पराधीनता है, दूसरे में स्वाधीनता; पहले में है अशान्ति का कटु बीज, और दूसरे में परितृप्ति का मधुर फल।

- प्रिय बन्धु! सोच-संभल कर चलना! इस जीवन-यात्रा में प्रत्येक पग पर तीन मार्ग फूटते हैं एक है भगवान की ओर ले जाने वाला, दूसरा स्वर्ग की ओर, और तीसरा नरक की ओर!!

- संसार न अच्छा है, न बुरा। इससे न प्रेम करो, न घृणा ही। इसमें रहकर प्रभु-भजन रूपी धन बटोरते रहो।

- यदि आप की बुद्धि भगवान की ओर (उसकी परख में) लगी है, परन्तु आप का हृदय संसार की ओर (संसार के भोगों में) लगा है तो आप की आस्तिकता खतरे में है।

यदि आप का हृदय भगवान की ओर लगा है परन्तु आप की बुद्धि संसार की ओर लगी है, तो भगवान आप के संरक्षक हैं।

यदि आप की बुद्धि भी संसार की ओर लगी है और आप का हृदय भी संसार की ओर लगा है, तो आप अपने विनाश का स्वयं आवाह्न कर रहे हैं।

यदि आप का हृदय भी भगवान की ओर लगा है और आप की बुद्धि भी भगवान की ओर लगी है, तो सत्य का द्वार आप के लिए दूर नहीं है।

- क्या आपका मन संसार से ऊब गया है? क्या आप की बुद्धि में संसार की असारता प्रत्यक्ष हुई है? क्या आप की आत्मा ने परमात्मा की अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत की है? क्या आप के हृदय में प्रभु-मिलन की तड़प जागी है? यदि यह सब हुआ है तो परमात्मा के अनुसंधान के आप निश्चय ही अधिकारी हैं।

- समस्त दर्प एवं गर्व छोड़ कर भगवान की शरण में आ जाओ। वे आप को उठा कर प्रेम से गले लगा लेंगे।

- निराश मत होइये, संसार में आप अकेले नहीं हैं। प्रभु सदैव आप के साथ हैं; उन पर विश्वास कीजिये, उन्हें पहचानिये।

● भगवान की कृपा-शक्ति की कार्य-शैली अत्यन्त रहस्यमय और आश्चर्यजनक है। उस का वास्तविक कार्य जीव को उसके 'सच्चे घर' ले जाना है, न कि उस (जीव) की प्रत्येक इच्छा को पूरा करना। वह दुःख, वियोग, विपत्ति, असफलता और मृत्यु आदि से भी काम लेना जानती है तथा उनका जीव के कल्याणार्थ उपयोग करने से भी नहीं चूकती।

● सच्ची स्वतंत्रता असंयत मनमानी नहीं है और न ही प्रसन्नता पूर्वक स्वयं अपनाया हुआ अनुशासन अथवा संयम बन्धन! मन की दासता पालने में भला स्वतन्त्रता कहाँ! स्वतन्त्रता प्राप्ति की सर्वतो-मुख्य शर्त ही है मनोजय।

● तुम संतोष को कभी न छोड़ो, और शान्ति तुमको कभी नहीं छोड़ेगी।

● भगवान के दरबार में, भगवान की प्राप्ति के लिए, रिश्वत (घूस) नहीं चलती। और तो क्या, वहाँ त्यागबल, बुद्धिबल, तपोबल, दानबल तथा पुण्यबल भी पराजित हो जाते हैं। वहाँ तो बस भोलाभाव, विनम्रता, सत्य-हृदयता और तड़पता प्रेम ही फल लाते हैं।

● जीने का असली मज़ा केवल उसी को ज्ञात है जो मरने के लिए सदैव तैयार रहता है।

● जब आपके हृदय में संसार के प्रति उदासीनता आये, तथा संतों के दर्शन, एकान्त-सेवन अथवा प्रभु-भजन करने की प्रेरणा उठे तब समझिए कि भगवान आपको अपनी ओर खींच रहे हैं।

● यदि कोई अचल एवं अविचल शाश्वत सत्ता न होती तो परिवर्तनशील जगत से छूटना संभव ही न होता।

तब निर्वाण अथवा मोक्षपद केवल दिल बहलाने के लिए एक झूठी कहानी बन कर रह जाता।

- मोक्ष की सच्ची साधना जगत के आन्तरिक तथा बाह्य समस्त विषय-वस्तुओं से अपनी आत्मा के तादात्म्य को तोड़ने में ही है।

- मुख पर तेज, वाणी में मधुरता, मन की प्रफुल्लता— ये योग के प्रत्यक्ष फल हैं। विषाद और अस्वास्थ्य तो योगी के लिए वैसे ही पराये बन जाते हैं जैसे सूर्य के लिए अन्धकार।

- यह शिकायत मत करिए कि परमात्मा नहीं मिला। यह स्वीकार करिये और कहिये कि आप ने अनन्यतापूर्वक और पूरे दिल से उसकी खोज ही नहीं की।

● परमात्मा की परिभाषा को जानना हो तो दर्शन-शास्त्र पढ़ते रहो, परमात्मा का अपरोक्ष अनुभव करना हो तो अपने अन्दर गहरी डुबकी लगाओ।

● सांसारिक लोग यदि आप के पक्ष में नहीं हैं, तो दुःखी होने की क्या बात? बस, सदा सर्वदा यही मांगिये कि भगवान आपके पक्ष में रहें।

● भगवान को भूलना अथवा अपने आप से दुश्मनी (शत्रुता) करना एक ही बात है।

● ख्याल रखना दोस्त, कहीं तुम परमात्मा का भजन-स्मरण करने के प्रोग्राम ही बनाते न रह जाओ, और उधर यमराज की ओर से भेजा हुआ तुम्हारा अटल वारण्ट आ पहुँचे। जो कुछ करना है, बस आज ही और अभी करो।

● जिस व्यक्ति के पास बुद्ध का 'हृदय' और आचार्य शंकर का 'मस्तिष्क' है, उसे इस भवसागर में डूबने का जरा भी खतरा नहीं है।

● अपने आपको व्यर्थ की सांसारिक चिन्ताओं में क्यों जलाते हैं? जगत में सब कुछ अस्थायी है, सब अनित्य है, सब बीत रहा है! दृढ़तापूर्वक प्रभु का पल्ला पकड़ लीजिए और निश्चिन्त हो जाइये।

● अज्ञानी संसार को जानने के समय संसार ही बन जाता है, ज्ञानी संसार को जानने के समय संसार भी बन जाता है।

● मन को सांसारिक चिन्तन से सर्वथा खाली कर दीजिये और प्रभु-दर्शन की प्रतीक्षा कीजिये। बस, यही भगवत्साक्षात्कार की कुंजी है।

● पराई आध्यात्मिक अनुभूतियों से साधक की परितृप्ति वैसे ही नहीं होती जैसे एक व्यक्ति के भोजन खाने से दूसरे की भूख नहीं मिटती। ऋषियों ने सत्य का साक्षात्कार किया—सो ठीक, पर आप को अपने लिए सत्य का स्वयंमेव साक्षात्कार करना होगा।

● दुनिया की बातों की ओर कान मत दीजिए। दुनिया न स्वयं सत्य-पथ पर चलती है और न दूसरों को ही चलने देती है। आप शान्त चित्त से अपने आत्मस्थ प्रभु की आवाज सुनिए तथा जो अनुमति वे अन्दर से दें, बस उस पर बेधड़क होकर चलते जाइए।

● यदि आप चाहते हैं कि आप की मृत्यु शान्त एवं सुलभ हो, तो जिस मानसिक स्थिति में आप मृत्यु के समय रहना चाहते हैं, उस मानसिक स्थिति में अभी से रहने का निरन्तर अभ्यास कीजिए।

- भगवान उसी के हृदय में बसते हैं, जिसके हृदय में संसार के लिए कोई जगह न रही हो।

- इस जगत में परमात्मा के अनन्य प्रेम से बढ़कर अन्य कोई उपलब्धि नहीं है।

- कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के समीक्षा रूपी वन में भटक जायेंगे, तो उससे बाहर निकलना अति कठिन हो जायेगा। अपने क्षुद्र अहं को छोड़ दीजिए और मानसिक निष्क्रियता की अवस्था में जैसी प्रेरणा प्रभु दें वैसे ही सामने आये कार्य को सहज रूप से कर दीजिए। कर्म-बन्धन से मुक्त होने का यह अचूक सूत्र है।

- कर्म-अभिमानी व्यक्तियों के लिए भगवान के दरबार में न्याय है और कर्म-अभिमान से रहित भक्तों के लिए उस (परमात्मा) की विशुद्ध एवं अपार कृपा।

- मनुष्य चाहे कहीं भी चला जाय और वह चाहे कैसी भी वेश-भूषा में रहे, परन्तु जब तक उसका मन चंचल और विकारपूर्ण है उसे कहीं और किसी तरह भी चैन नहीं पड़ सकता।

- सोचिये—यदि आपका शरीर अभी छूट जाये तो आपके धन, सम्पत्ति, मान और सांसारिक वैभव किस काम आयेंगे। आपके प्रिय सगे-सम्बन्धी भी दो-चार दिन रो-धो कर आप को भूल जायेंगे। आगे की यात्रा तो आपको स्वयं अकेले और खाली हाथ ही करनी होगी।

- संसार में न कोई तुम्हारा है, और न ही तुम किसी के हो। परन्तु भगवान के साथ तुम्हारा नित्य सम्बन्ध है। जब तुम अपने इस सच्चे सम्बन्ध को सचमुच पहचान लोगे तो तुम्हारी जन्म-जन्म की 'बिगड़ी' बन जायेगी।

- जिस व्यक्ति में अपने जीवन को जोखिम में डालने का साहस नहीं है, वह आध्यात्मिक पथ की कोई भी महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त नहीं कर सकता।

- दूसरा कोई बुराई करता है तो आप को क्या? परमात्मा उसके कर्मों का हिसाब उससे पूछेंगे, न कि आपसे। आप अपने काम से मतलब रखें और बुराई से बचते रहें।

- अनुकूल परिस्थिति में तो सभी साधकों का भजन-ध्यान ठीक चलता ही है। साधक की साधन-तत्परता का असली पता तो तब चलता है, जब उसके सिर पर चारों ओर प्रतिकूलताओं और विपत्तियों के बादल छा जाते हैं।

- दूसरों की निन्दा करना वस्तुतः अपने ही नीच होने और छोटेपन का परिचय देना है।

● यदि आप को आध्यात्मिक एकाग्रता को प्राप्त करना है तो अपनी प्राप्त-परिस्थिति में अपने आप को ठीक तरह व्यवस्थित करिए, अपनी इच्छाओं को कम कीजिए, तथा नियमपूर्वक प्रतिदिन ध्यान-अभ्यास में अवश्य बैठिए।

● धैर्य रहित साधक यदि अध्यात्म-पथ में हताश हो जाय तो इसमें आश्चर्य काहे का? आध्यात्मिक विकास कोई चमत्कार अथवा दर्शन तो है नहीं, जो आँख झपकने की देरी में ही हो जाए। वह तो व्यक्ति की समुच्चय प्रकृति का दिव्य रूपान्तरण है—वह तो जन्म-जन्म की बाज़ी है।

● यह जीवन चार दिनों का मेला है, इसमें सबसे मिल-जुल कर रहो। किसी से बुरा न कहो, न करो।

● ऐसी सुख-सुविधाओं को, जो परमात्मा से बिछोड़ें, दूर से ही नमस्कार; ऐसे दुःख-दर्द का, जिससे भगवान के

चरणों में प्रीति उपजे अथवा बढ़े, सदा स्वागत—सच्चे प्रभु-प्रेमियों की यही धारणा होती है।

- तुम चाहे मानो अथवा न मानो—पत्थर, वनस्पति, पशु, मनुष्य और देवता में एक ही अविभक्त, परिपूर्ण चेतना समाई हुई है। इन (पत्थर, वनस्पति आदि) में अन्तर तो इस चेतना की अभिव्यक्ति से है, न कि स्वरूप से।

- यदि आप अपने ध्यान-अभ्यास को नियमित रूप से प्रतिदिन केवल आधे मिनट के हिसाब से भी बढ़ाएँ, तो सालभर में आप समाधि तक पहुँच सकते हैं। प्राप्त तो सभी कुछ किया जा सकता है परन्तु आवश्यकता है सच्ची लगन, सम्यक् युक्ति और निरन्तर अभ्यास की।

- मन के पूरा रुक जाने पर संसार अर्थहीन हो जाता है।

● देखना! कहीं भोगी मनुष्य की बाह्य हंसी को देखकर किसी भ्रम में मत पड़िएगा—वह हंसी तो उसकी अपनी आन्तरिक अशान्ति को छुपाने का एक उपाय मात्र है। हाँ, उस बोधवान की, जो अपना 'काम' पूरा करके आत्मिक आनन्द की मस्ती में मस्त है, मन्द-मन्द मुस्कान को अवश्य देखिये तथा विचार करिए।

● सचमुच कितने ऐसे मनुष्य इस जगत में होंगे जो दूसरों की उन्नति देखकर अपने अन्दर जलते नहीं होंगे! जगत में यदि ईर्ष्या और स्वार्थ की भावना मिट जाय तो निश्चय ही इस पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आए।

● जिसके कानों ने एक बार प्रभु के दिव्य नाम की मधुरता का रस प्राप्त कर लिया, उसके लिए दुनिया के सब राग-रंग फीके हो जाते हैं।

● जो और जितना भी आप साधन-अभ्यास करते हैं, उसे प्रेमपूर्वक और बड़े उत्साह से करिए, टूटे दिल से नहीं। भजन को अधिकाधिक रसपूर्ण बनाइये। ऐसा थोड़ा किया गया भजन भी अधिक फल देने वाला होता है।

● स्वर्ण की परख के लिए भूषण को तोड़ना आवश्यक नहीं, उसके लिए पारखी सुनार की नजर चाहिए। परमात्मा के दर्शन के लिए संसार को छोड़ना आवश्यक नहीं, उसके लिए ज्ञानी-भक्त की दृष्टि ही अपेक्षित है।

● कोरी भाषणगिरी और उपदेशगिरी से ही तो जगत का सुधार होने से रहा। जगत का सुधार तो तभी होगा जब ऐसे विद्वान एवं अनुभवी महापुरुष कार्यक्षेत्र में उतरेंगे जो प्रबुद्ध भी हों, संयमी भी और निःस्वार्थी भी।

● एक ऐसे विरक्त अथवा त्यागी की अपेक्षा, जो अपने बाह्य त्याग और विरक्ति के अभिमान में दूसरों की

निन्दा-आलोचना करने-सुनने में ही लगा रहता है वह सद्गृहस्थ निश्चय ही सौ दर्जे श्रेष्ठतर है, जो प्रभु-नाते अपने पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों को कुशलता पूर्वक निभा रहा है।

● जो साधक इस बात का इच्छुक हो कि उसके साधन और आध्यात्मिक अभीप्सा कभी शिथिल न हों, उसे चाहिए कि वह उन संतों का, जो साधन में तत्पर तथा प्रभु-प्रेमरत हैं, संग-सहवास कभी न छोड़े।

● क्या आपने कभी यह सोचा है कि वह सब कुछ आपको छोड़ना पड़ेगा, अथवा आप से छीन लिया जाएगा—वह सब कुछ, जिसके लिए भाग-दौड़ करने में आपको न दिन को चैन है न रात को? और, वह सब कुछ छोड़ने, अथवा छुड़ाये जाने का समय कब आ जाए इसका क्या भरोसा!—ऐसा अवश्यमेव और बार-बार सोचिये, इससे आपको प्रभु की ओर चलने में बल मिलेगा।

● दूसरों के साधनपथ और धारणाओं की आलोचना तथा उन पर टीका-टिप्पणी करना कोई अच्छी आदत नहीं। सब साधकों का पथ आज तक न एक हुआ है और न कभी एक हो ही सकता है। परन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि गन्तव्य सबका एक ही है।

● जब आप आत्मा की गहराई में उतरते-उतरते वहाँ पहुँच जाते हैं जहाँ से अधिक नीचे उतरना संभव नहीं है, तो आप अपने में 'उसको' उपलब्ध कर लेते हैं जो सभी ऊंचों से ऊंचा है।

● जगत की क्षणभंगुरता और अस्थिरता को देख कर भी जिस व्यक्ति के मन में जगत के प्रति वैराग्य नहीं होता, वह आँखें रखता हुआ भी अन्धा है, चतुर होते हुए भी मूर्ख।

- जब तक अपूर्णता है साधना में विघ्न-बाधाएँ अवश्यमेव आती रहेंगी, उनसे घबराने से काम नहीं चलेगा। उनकी परवाह छोड़ कर उत्साह और धैर्य-पूर्वक पूर्णता की ओर बढ़ते चलिए, प्रभु आप के सहायक हैं।

- सामान्य नियम यह है कि जब साधक पर्याप्त निष्क्रियता (passivity) एकाग्रता, शुद्धता एवं निस्पृहता लाभ कर लेता है तब उसे ऊंचे आध्यात्मिक लोकों की अनुभूतियां होनी आरम्भ होती हैं, परन्तु कभी-कभी मन के शान्त होने पर अकस्मात् ऊंचे लोकों से किसी दिव्य दृश्य की झलक मिल भी जाती है।

- आपको भगवान की आवश्यकता है, न कि भगवान को आपकी। प्रभु का स्मरण-ध्यान करोगे तो आप का ही लाभ है, नहीं करोगे तो आप की ही हानि है।

● स्वतन्त्र होने की इच्छा से जो लोग सांसारिक ऐश्वर्य और वैभव जुटाने में लगे हैं, वे धोखे में हैं। यह प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं कि इसी ऐश्वर्य-वैभव ने अनेकों की सरलता और स्वतन्त्रता को मिट्टी में मिलाया है।

● जो कर्म भविष्य की कल्पना तथा भूत की स्मृति से प्रभावित न होकर आत्मा की नीरवता से प्रस्फुटित होता है वह सामान्यातीत रूप से ईश्वर-प्रेरित होता है।

● जगत को मिथ्या कहने वाले अनेक आए और चले गए, परन्तु जगत वैसे ही चल रहा है। सचमुच कितना हृदयस्पर्शी एवं हृदयग्राही है भगवद् भक्तों का यह कहना कि यह जगत नित्य प्रभु की नित्य लीला है!

● प्रेम से बड़ी कोई शक्ति नहीं और ज्ञान से बड़ा कोई प्रकाश नहीं। जितना जिसका जीवन प्रेम एवं ज्ञान से संचारित है उतना ही वह व्यक्ति महान् है।

- जब आप संसार के आन्तरिक अथवा बाह्य किसी भी विषय के साथ तद्रूप नहीं होते तब आप अपने विशुद्ध स्वरूप में होते हैं।

- 'मैं' और 'मैं-पन' के अन्तर को समझिए। 'मैं' सत्ता है, 'मैं-पन' परछाईं। 'मैं' ब्रह्म है, 'मैं-पन' जीव। 'मैं-पन' का सृजन तब होता है जब 'मैं' देश-काल अनुगत अपने किसी प्रतिबिम्ब के साथ तादात्मय को प्राप्त हो जाता है।

- सम्यक् अध्यात्मवाद न तो हमें संसार से कायरों की तरह बच कर भाग निकलने को कहता है और न ही संसार के पीछे दौड़ने को। वह तो हमें उस शाश्वत सत्ता, असीम शक्ति एवं दिव्य आनन्द के प्रति सचेत कर के उसे इसी जीवन में अधिगत करने की प्रेरणा देता है, जिसे पाने के लिए हम यहां आये हैं।

● ज्ञान न ज्ञाता की कृति है, न ज्ञेय का विकार, तथा न ही ज्ञेय और ज्ञाता का सम्बन्ध है। वह तो अनन्त, त्रिकाल-अबाधित एवं त्रिकाल-अबाध्य वह परात्पर तत्त्व है जो ज्ञेय, ज्ञाता और इनके परस्पर सम्बन्ध के भाव और अभाव दोनों का प्रकाशक है।

● स्तुति और निन्दा से जिसका चित्त सुख और दुःख का अनुभव करता है, उसे समझ लेना चाहिए कि प्रभु के प्रति उसका आत्मदान अभी पूर्ण नहीं हुआ।

● ब्रह्मानुभव की स्थिति में आप वही रहते हैं जो आप अपने वास्तविक स्वरूप में हैं। संसार की प्रतीति करने में आप संसार भी बन जाते हैं।

● वाणी का सबसे बड़ा सदुपयोग प्रभु-चर्चा में है, मन का प्रभु-चिन्तन में, विद्या का प्रभु-निष्ठ होने में तथा बुद्धि का आत्मा और अनात्मा के विवेक में।

- सुखी भविष्य की चिन्ता में पड़ कर अपने वर्तमान को दुःखी मत बनाइए।

- मानव-जीवन का सच्चा लक्ष्य है आध्यात्मिक पूर्ण चेतना को अपने अन्दर अभिव्यक्त करना। जो इस उद्देश्य को लेकर अपने कर्मों, भावनाओं तथा विचारों को निरन्तर साधता रहता है, वही सच्चा साधक है।

- आपके सब सहारे छूट जाने पर भगवान आप का सहारा बनें अथवा न बनें, यह उनकी मर्ज़ी। परन्तु भगवान पर पूर्ण विश्वास करके जब आप स्वेच्छा और प्रसन्नता पूर्वक अन्य सभी आश्रयों को त्याग देते हैं तो भगवान आप का सहारा बने बिना रह ही नहीं सकते।

- स्वप्न चाहे अच्छा हो अथवा बुरा, वह स्वप्न ही होता है; परिस्थिति चाहे अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल, वह

अनित्य और अस्थाई ही है—यह समझ कर सब अवस्थाओं में शान्त बने रहिए।

● भगवान की लीला को जानना उतना ही कठिन है जितना कि उनके स्वरूप को यथावत जानना। परन्तु यदि आपने प्रभु को एक बार सच्चे हृदय से वरण कर लिया तो विश्वास रखिये कि वे आपके आध्यात्मिक अनिष्ट को कभी सहन नहीं करेंगे।

● द्वन्द्वों की परस्पर सापेक्षता को समझना अत्यन्त आवश्यक है। दुःख के बिना सुख की, पाप के बिना पुण्य की, मृत्यु के बिना जीवन की और हानि के बिना लाभ की कोई सत्ता नहीं है, अर्थात उनको एक दूसरे से सर्वथा अलग नहीं किया जा सकता। आप को यदि दुःख, मृत्यु और हानि से पूर्णतया छूटना है तो पुण्य, सुख, जीवन तथा लाभ की इच्छा भी छोड़ कर उस परात्पर निर्विशेष

एवं निर्पेक्ष तत्व की खोज तथा प्राप्ति करनी होगी, जो सब द्वन्द्वों से अतीत एवं मुक्त है।

- चिन्तन में महान शक्ति है। गलत चिन्तन से सत्य असत्य प्रतीत होने लगता है और असत्य सत्य। फिर भला यह भी मानने की बात है, जैसा कोई-कोई कहते हैं, कि सत्य के चिन्तन से सत्य-अनुभूति की दिशा में कोई लाभ नहीं।

- भाग्यहीन हैं वे जो भगवान से विमुख हैं! उनके लिए न इस लोक में शान्ति है न परलोक में ही।

- जो व्यक्ति अपनी सारी आयु संसार की वस्तुएं बटोरने में ही व्यतीत कर देता है, उसे अन्तकाल में खाली हाथ जाने पर घोर पश्चाताप की महान अग्नि में जलना पड़ता है।

- रथ रथिन के वास्ते होता है, रथिन रथ के वास्ते नहीं। मकान मालिक के लिए होता है, मालिक-मकान, मकान के लिए नहीं। इसी प्रकार शरीर आत्मा के लिए है, न कि आत्मा शरीर के लिए। यदि आपको शरीर के ही भरण-पोषण और सुख-सुविधा के सिवा अपने आध्यात्मिक विकास का कुछ ख्याल नहीं है तो आपकी बुद्धि को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है, किसी अनुभवी पथ-प्रदर्शक की शरण में जाइए।

- जो एक है, वही सर्व भी है। पर मनुष्य का दुर्भाग्य यह है कि वह न तो अकेला ही होना चाहता है और न सर्व ही बनना चाहता है, अतएव वह सापेक्षता की चक्की में पिसता रहता है। ससीमता का बोझा ढोता रहता है।

- भगवान को चाहे ॐ, राम, कृष्ण, वाहिगुरु, अल्लाह, ईसा, ऐडोनाई, बुद्ध, महावीर, इन्द्र, माँ भगवती, गॉड,

मज़दा आदि किसी भी नाम से पुकारिए—यदि आपकी पुकार सच्चे दिल से उठेगी तो वह अवश्य सुनी जाएगी तथा उसका प्रति-उत्तर भगवान की ओर से अवश्यमेव मिलेगा।

● जो साधक कोई आनन्दपूर्ण आन्तरिक आध्यात्मिक अनुभव होने पर उसे अपने अन्दर नहीं समा सकता तथा उसकी डौंडी पीटने लगता है, उसकी आगे की आध्यात्मिक प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को गुप्त रखे और उन्हें अपने गुरु अथवा पथ-प्रदर्शक के अतिरिक्त, बिना प्रयोजन किसी पर प्रगट न करे।

● ऐसे शरीर पर क्या अभिमान, जिस को चार दिन की बीमारी ही कुरूप कर दे! ऐसी बुद्धि पर क्या गर्व, जो मस्तिष्क पर एक चोट लगने से जवाब दे बैठे! अरे, ऐसे

जीवन पर ही कैसा घमण्ड, जो तीन मिनट वायु न मिलने पर समाप्त हो जाए!

● एक सरल हृदय और पवित्र भावना वाले भक्त को जो आनन्द प्राप्त है, वह एक तर्कप्रधान बुद्धिवाले दर्शनशास्त्री के भाग्य में कहाँ? भक्त जिस 'दुनियां' में रहता है, दार्शनिक को उसका दर्शन भी सुलभ नहीं, उसमें प्रवेश तो दूर रहा।

● जो समय मनुष्य दूसरों के दोष ढूंढने और उनकी चर्चा करने में व्यतीत करता है, वह समय यदि वह अपने दोष दूर करने में लगाये तो उसके जीवन का अतिशीघ्र सुधार हो जाये।

● विवेक-बुद्धि अवान्छनीय नहीं है, पर आप अपनी जीवन-साधना का इसे ही अधिनायक न बनाना। विवेक-बुद्धि

जाग्रत अवस्था में भले ही आप की सहायता-रक्षा करे, परन्तु स्वप्न में वह आपका साथ छोड़ देगी। बल्कि आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि सुषुप्ति अवस्था में, जब बुद्धि सो जाती है, अनेक शुभाशुभ प्रभाव, सुझाव और सूचनायें समष्टि मन से व्यक्ति के चित्त में प्रवेश करती हैं। आप तो उन्हीं परात्पर प्रभु के हाथों में ही अपने जीवन-साधना की बागडोर सौंपना, जो सब समय जागते हैं तथा जो कभी भी आपका साथ नहीं छोड़ते।

- व्यवहार में प्रवृत्त होते समय यदि आपको याद नहीं रहता कि यह सब एक अभिनय है, जिसे प्रभु देख रहे हैं और आप का दर्जा इसमें एक अभिनेता का ही है, तो आप का आध्यात्मिक मनन-चिन्तन किस काम का? ऐसे निःशक्त मनन-चिन्तन से तो जनता-जनार्दन की सेवा ही भली।

- इससे अधिक हानि की बात मनुष्य के लिए क्या हो सकती है, कि वह हर समय उन विषय-भोगों में ही व्यस्त रहे, जो उसके शरीर को अस्वस्थ तथा मन-बुद्धि को अपवित्र और चंचल बनाते हैं। इससे बड़ा जीवन-लाभ मनुष्य को क्या हो सकता है कि वह अपने मन और इन्द्रियों को शुद्ध तथा वश में करके उनका भगवद्प्राप्ति के मार्ग में सदुपयोग करे!

- यदि यह ठीक है कि समस्त सेवा का प्रयोजन मानव मात्र को सुख पहुंचाना है, तो ज्ञान-उपदेश तथा अपने जीवन्त उदाहरण द्वारा लोगों को भगवान की ओर लगाने से श्रेष्ठतर कोई दूसरी सेवा नहीं है, क्योंकि परमात्मा की प्राप्ति से, अथवा प्रभु-भजन में, जो और जितना सुख जीव को मिलता है वह और किसी तरह भी उसे मिलना संभव नहीं है।

- यदि आप चाहते हैं कि आपको बाद में पछताना न पड़े तो जो अपना है उसे ही अपना मानो, जो पराया है उसे अपना मत मानो। परन्तु सुनो! अपना वह होता है जो कभी अपने से छूटता नहीं और पराया वह है जो सदा अपने पास रहता नहीं।

- मनुष्य-जीवन एक आध्यात्मिक परीक्षा है, इसमें केवल वे ही सफल होते हैं, जो सदैव सजग एवं सावधान रह कर आत्म-निरीक्षण करते रहते हैं।

- व्यक्ति के पुरुषार्थ से जो कार्य सौ वर्षों में भी पूरा नहीं होता, वह प्रभु-कृपा से एक क्षण में ही सध जाता है। फिर भी आश्चर्य है कि मनुष्य अपने बल के अभिमान रूपी नशे में डूबा रहता है और भगवद्कृपा की याचना नहीं करता।

● कहा जाता है कि यदि आप परमात्मा की ओर एक पग चलते हैं तो वे आप की ओर दस पग आगे बढ़ आते हैं—यह भी एक दृष्टि से यथार्थ है। परन्तु पूर्ण सत्य तो यह है कि भगवान सदैव आप के साथ हैं, मिले हुए ही हैं—आप उनकी ओर देखिये तो सही।

● भगवान की दृष्टि में किसी भी कर्म का मूल्य कर्ता की भावना से पड़ता है, न कि किसी क्रिया विशेष से। निःसंदेह, समुचित भावना से किए गए दिन-प्रतिदिन के सामान्य छोटे-मोटे कर्म भी भगवान की पूजा ही बन जाते हैं।

● सहज कर्म की पहचान क्या है?—सहज कर्म वह है जिसमें कर्म तथा उस कर्म का निश्चय समकालीन (एक ही समय में) होते हैं; उसमें न भविष्य की कल्पना के लिए स्थान है और न ही भूत की स्मृति के लिए।

● मनुष्य को विविध प्रकार से अपनी अपूर्णता की प्रतीति होती है। यदि वह सर्वथा अपूर्ण होता तो वह इस अपूर्णता को जानता-देखता कैसे? परन्तु यदि वह पूर्णतया पूर्ण ही होता तो उसे अपने में अपूर्णता की प्रतीति होती ही क्यों? इससे स्पष्ट है कि अपने मनुष्य-भाव में वह न तो पूर्णतया पूर्ण है, और न पूर्णतया अपूर्ण ही। सच पूछो तो वह (मनुष्य) पूर्ण परमात्मा की एक अपूर्ण अभिव्यक्ति है।

● साधारण व्यक्ति एक संत की आन्तरिक स्थिति को भला क्या जाने, क्या समझे? उसकी दृष्टि तो संत की वेश-भूषा तथा रहन-सहन के बाह्य तौर-तरीके तक ही जा सकती है। सच्चे संत की पहचान तो कोई सच्चा संत ही कर सकता है।

● जिन महापुरुषों की महानता देख कर सब का मस्तक अपने आप झुक जाता है, वे एक दिन आप जैसे

सर्व-साधारण व्यक्ति थे। उन्होंने अपने आपको संयम और अनुशासन के जीवन से तपाया, भगवान का निरन्तर गुण गाया, तब इस ऊंचे दर्जे को पहुंचे। आप भी उनके पदचिन्हों पर चलिए और देखिए आप भी वैसे ही महान् बन जाएंगे।

- संसार की अवास्तविकता पर विचार करने से मन में वैराग्य होता है, और परमात्मा की वास्तविकता पर विचार करने से प्रभु-चरणों का अनुराग। प्रभु-दर्शन के लिए कोरा वैराग्य नहीं अपितु, अनुरागयुक्त वैराग्य ही अपेक्षित है।

- समर्पण की तीन अवस्थाएं हैं—

  कर्म के फल की इच्छा का समर्पण।

  कर्म-समर्पण।

  आत्म-समर्पण।

आत्म-समर्पण से ऊंची त्याग की और कोई अवस्था नहीं है।

- मनुष्य की भलाई इसी में है कि वह नश्वर वस्तु-व्यक्तियों के मोह को छोड़ कर अपने मन को नित्य परमात्मा के पावन चरणों में जोड़े।

- जब कोई ऐसी विपत्ति आपके सिर पर आ पड़े जो किसी तरह भी न टले, तो विषाद और निराशा के सागर में मत डूब जाइये। उसे अपने हित के लिए भगवान की ओर से भेजा हुआ समझ-मान कर उससे शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास करिए।

- जानते हैं, आध्यात्मिक साधना की सफलता में सबसे बड़ी बाधा क्या है?—वह है दम्भ। दम्भी मनुष्य की छाया से तो देवगण भी दूर भागते हैं।

● जीवन का परम लक्ष्य है परमात्मा में जीना, और इस लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग का परम रहस्य है परमात्मा के लिए जीना। जगत के समस्त सत्-शास्त्रों एवं संत-महापुरुषों का यही अन्तिम निर्णय है।

● भगवान सब प्रकार से परिपूर्ण हैं। पूर्ण में जो कुछ भी ढूंढते हैं, वही मिल जाता है। उसके दरबार में जाकर कभी कोई विफल मनोरथ नहीं होता। परन्तु विचारशील साधक भगवान में भगवान को ही ढूंढते हैं।

● 'प्रेम' शब्द तो बड़ा ही सरल है, पर प्रेम पालना अत्यन्त कठिन है, और परमात्मा से प्रेम तो वही—केवल वही कर सकता है जिसने जीते जी मरना सीख रखा हो।

● क्या आपके हृदय को भगवद्-प्राप्ति का लक्ष्य आन्दोलित नहीं करता? क्या आपके सब कर्म अच्छे-बुरे के विवेक से रहित अथवा निष्प्रयोजन होते हैं? यदि

सचमुच ऐसा है तो आप दो में से एक अवश्य हैं—या तो आप पूरे मुक्त हैं या पूरे विक्षिप्त, क्योंकि पूरे पशु तो आप अब बन ही नहीं सकते!!

● आप भगवान से प्रेम करते हैं या नहीं, यह तो आप ही जानें, पर भगवान निश्चय ही आप से प्रेम करते हैं। आपको उनकी आवश्यकता है तो भी आप उनका स्मरण नहीं करते, उनको आप से कोई भी अपेक्षा नहीं है तो भी वे आपको कभी नहीं भूलते। इसमें उनका तो परम माधुर्य है पर आपका परम दुर्भाग्य भी—क्योंकि इससे आप उस महान् रस एवं आनन्द से वंचित रह जाते हैं जो प्रभु-स्मरण से मिलता है।

● क्या आपने अपने आपको कर्मों तथा सम्बन्धों में तो नहीं खो दिया? अपने जीवन से कर्मों एवं सम्बन्धों को निकाल कर क्या आपने अपने शुद्ध अस्तित्व को कभी

महसूस किया है? कर्मों एवं सम्बन्धों से अलग हो कर अपने आप से पूछो—मैं कौन हूँ? कर्म और सम्बंध जब नहीं रहते तब भी जो अपना आप शेष रहता है उसे पहचानो। वही अमृत का अक्षय स्रोत्र है। वही है अनन्त जीवन की अखण्ड निधि।

● जीवन के सच्चे उद्देश्य को मात्र जान लेने या मान लेने से ही कुछ नहीं होता। उसकी प्राप्ति के मार्ग में सिर पर कफन बांधकर चलने से ही कुछ मिलता है।

● दुनिया यदि आपकी 'वाह-वाह' करती है तो झूठे अभिमान से मत फूलिये, क्योंकि परमात्मा का न्याय दुनिया के न्याय से सर्वथा भिन्न है। जगत आपके बाह्य आचरण को देखकर अथवा अपने स्वार्थ से ही आपके प्रति निर्णय लेता है। परन्तु परमात्मा मुख्यतः देखता है आपके हृदय की अन्तरतम् भावनाओं को।

- यह मत कहिये कि परमात्मा की कृपा आप पर नहीं है। परमात्मा की कृपा आप पर है और पूरी है। कमी प्रभु-कृपा में नहीं, वरन् आपकी संवेदनशीलता में ही है। शायद आपका हृदय कुण्ठित है और आपकी दृष्टि तिमिरपूर्ण। कृपया शिकायत करने की पुरानी आदत को छोड़कर अपने हृदय और बुद्धि के उपचार की चिन्ता कीजिए।

- मनुष्य और परमात्मा के बीच प्रथम और अन्तिम बाधा एक ही है। वह बाधा है अहंभाव! जिन उपायों से अहंभाव विरल तथा विसर्जित होता है, उन्हीं उपायों का नाम साधना है।

- आप चित्त की स्थिरता चाहते हैं न? स्थिरता होती है सजगता (vigilance) के अनुपात में। मन चंचल होता है तब, जब आप उसके साक्षी नहीं रहते। साक्षी भाव के

उदय होते ही मन की गति धीमी होने लगती है। प्रातः एवं सायंकाल कम से कम आधा घंटा सुखासन में बैठकर द्रष्टा होकर मन को देखिये—बस इतना ही। थोड़े दिनों में ही आप पायेंगे कि मन में अपूर्व स्थिरता एवं शान्ति उतरने लगी है। अभ्यास-प्रयोग तो आपको ही करना होगा।

● तुम्हारे भजन-साधन में बाधा कौन डालता है—यह कभी सोचा तुमने? परमात्मा? प्रारब्ध? नहीं, नहीं, उन पर मिथ्या दोष लगााना उचित नहीं है। यह तो तुम्हारे हृदय की धन, मान और इन्द्रिय-सुख पाने की अगणित वासनायें हैं, जो तुम्हें शान्ति से ध्यान-भजन में नहीं बैठने देतीं। परमात्मा तो तुम्हें अपना बना लेना चाहता है, पर तुम हो कि मानो उससे बच भागने के उपाय कर रहे हो।

● आदमी यदि ठीक है तो वह घर को आश्रम, दुकान को मन्दिर और व्यवसाय को भजन में रूपांतरित कर लेगा। आदमी यदि गलत है तो वह आश्रम को घर, मंदिर को दुकान और भजन को भी व्यवसाय बना लेगा।

● प्रभु-विरह-विहीन व्यक्ति एक भक्त के प्रभु-प्रेम में रोने-तड़पने को क्या समझे, उसके मर्म को क्या जाने? उसकी समझ में तो बस उसी मनुष्य का तड़पना-रोना सार्थक है जो अपने किसी सांसारिक सम्बन्धी अथवा पद-पदार्थ के छूटने अथवा न मिलने पर रोता है। प्रभु-विरह में प्रभु-झांकी/प्रभु-दर्शन का पूर्व संकेत है, पर वह झांकी-दर्शन सांसारिक वस्तु-व्यक्तियों में आसक्त व्यक्ति के मलिन हृदय में कहाँ?

● संसार के पीछे भागो चाहे संसार से दूर भागो, पर जब तक आप भागते रहोगे तब तक संसार में ही रहोगे।

आप अभी रुक जाओ तो आप देखोगे कि आप परमात्मा में ही हो, परमात्मा ही हो।

● आध्यात्मिक पथ में जिस त्याग की अनिवार्यता है वह है मैं-पन और मेरे-पन का त्याग। केवल प्राप्त पदार्थों एवं सम्बन्धित प्राणियों में ही नहीं वरन् माने हुए अपने शरीर, प्राण तथा मन में भी मैं-पन और मेरे-पन को सर्वथा त्यागना होता है। जो भी हमारे पास है, अथवा जो कुछ भी हम हैं, वह सब परमात्मा का है—इस भाव में जीने से चित्त की वह शान्त दशा उपलब्ध होती है जिसमें हम निर्विकार सद्वस्तु का अनुभव करते हैं।

● "ईश्वर ही सब कुछ करता है" अथवा, "आत्मा अकर्ता है"—इन ऋषि-अनुभूत अतीन्द्रिय तथ्यों का उपयोग अपने पाप-कर्मों की जिम्मेदारी से बचने के लिये करना केवल व्यर्थ ही नहीं अपितु अनर्थकारी भी होता है,

क्योंकि इस प्रकार की झूठी सान्त्वना मनुष्य के सुधार के सब द्वार बन्द कर देती है।

● दुनिया के लोगों के प्रति हजार बार उपकार करने पर भी यदि एक बार भी उनकी अनुकूलता के विपरीत आप कुछ करते हैं तो आपका सारा उपकार भूलकर वे आपका तिरस्कार ही करते हैं। परमात्मा के प्रति आपसे हजार अपराध हो जाने पर भी यदि आप सच्चे दिल से पश्चाताप करके उनके अनुकूल हो जाते हैं तो वे निश्चय ही क्षमा प्रदान कर आपको गले लगा लेते हैं। ये उद्गार उन परम संतों के हैं जिन्होंने जीवन को उसकी दिव्य समग्रता में अनुभव किया तथा जिया है। अब आप ही निर्णय कर लें कि आपको दुनिया को वरण करना है अथवा परमात्मा को।

● क्या आप जानते हैं कि दुनिया में सब से बड़ी मूर्खता की बात क्या है?—वह है परमात्मा अथवा धर्म के नाम पर लड़ना-झगड़ना।

● प्रभु-विमुख व्यक्ति यदि जिन्दा है तो फिर मुर्दा कौन है?

● आनन्द के लिए कर्म करना एक बात है और आनन्द से कर्म करना सर्वथा दूसरी बात। एक संघर्ष की पीड़ा है दूसरी रस की क्रीड़ा, एक है अपूर्णता का दंश और दूसरा है पूर्णता का विलास।

● जीवन से पलायन (escape) सचमुच अज्ञानमूलक ही है। पर जन्म लेना, जीविका उपार्जन करना, बच्चे पैदा करना और मर जाना—यह भी कोई जीवन है? नहीं, नहीं, यह तो पशुता की पुनरावृत्ति है। यह तो मूर्छा का ही विस्तार है। यह तो मात्रा मृत्यु का प्रवाह है। जीवन की सार्थकता तो उस परम चेतना में प्रतिष्ठित होने में है जो पूर्ण, सहज, स्वतन्त्र एवं शाश्वत है।

● दुःख, संकट, प्रतिकूलतायें आदि हमारे जीवन में इसलिये नहीं आतीं कि परमात्मा हमारी परीक्षा करना चाहता है। प्रभु तो सर्वविद् एवं सर्वज्ञ हैं, उनके परीक्षा करने का सवाल ही नहीं है। हमारे जीवन में संकट और समस्यायें हमें यह जताने के लिये आती हैं कि हम में धैर्य, बल, असंगता व प्रभु के प्रति श्रद्धा कितनी है। सच पूछें तो उनके आने का प्रयोजन हमारे प्रमाद और गर्व को तोड़कर हमें जगाना भर होता है।

● अपने कर्तव्य पालन की दुहाई सर्वत्र दी जाती है। पर मैं पूछता हूँ कि अपने आपको जाने बिना अपने कर्तव्य को जानना तथा उसका पालन यदि संभव है तो फिर असम्भव क्या है?

● किसी कर्म को अपने आप में न छोटा समझो, न बड़ा। परमात्मा के साथ जुड़ने से वह बड़ा हो जाता है और अहंकार के साथ जुड़ने से वही छोटा बन जाता है।

● प्रभु-प्राप्ति का मार्ग बड़ा ही सूक्ष्म एवं पेचीदा है। साधक के लिये एक ओर तथाकथित 'जनता जनार्दन की सेवा' के नाम पर सांसारिक प्रवृत्ति में पूरी तरह डूब जाने का खतरा है तो दूसरी ओर तथाकथित पूर्ण निवृत्ति और विरक्ति के नाम पर आलसी और अकर्मण्य बन जाने का प्रलोभन। सत्यानुभूति के अपने लक्ष्य को सदैव सामने और स्मरण रखते हुए जो साधक संतुलित, सुव्यवस्थित और सम्यक् आचार-विचार युक्त जीवन व्यतीत करता है वही सत्य को शीघ्र उपलब्ध होता है।

● सम्यक् विवेक और बोध के अभाव में 'त्याग' साधक के लिये वही काम करता है जो 'भोग' विषयी मनुष्य के लिये।

● आप चाहे हजारों पुस्तकें पढ़ें और चाहे हजारों प्रवचन सुनें, परन्तु जब तक आप अपना ध्यान भीतर

में बैठे 'पढ़ने वाले' और 'सुनने वाले' की ओर नहीं मोड़ेंगे तब तक उस स्वरूपभूत परमदेव को नहीं पहचान सकेंगे जिसे पहचान लेने पर कुछ पढ़ना-सुनना बाकी नहीं रहता।

- "परमात्मा सत्-चित्-आनन्द है"—तुमने यह जान लिया तो क्या हुआ? तुम्हारी संतृप्ति तो तभी होगी जब तुम यह जान लोगे कि तुम ही सत्-चित्-आनन्द हो।

- परमात्मा की प्राप्ति अत्यंत सरल है, यदि अहंकार अपनी पूरी पराजय स्वीकार कर ले।

- सान्त एवं नाशवान पदार्थ-परिस्थितियों से अनन्त एवं शाश्वत आनन्द की प्राप्ति की प्रत्याशा निश्चय ही वह बड़ी से बड़ी प्रवंचना है जो मनुष्य का मन उसे दे सकता है अथवा देता है। यह कहना गलत न होगा कि मनुष्य के सम्पूर्ण भटकाव के पीछे यह प्रवंचना ही काम करती है।

- स्वयं को बदल लो, परिस्थिति बदल जायेगी।

- धन्य हैं वे जो परमात्मा में अनन्य भक्तिभाव रखने वाले हैं, क्योंकि उन्हें जरूर परमात्मा के दर्शन होंगे।

- समष्टि के तल पर जो 'माया' है, व्यष्टि के तल पर उसी को मन कहते हैं। यह मन ही है जो परात्पर असीम चेतना को ससीम, अखण्ड को खण्डों में विभक्त और द्वन्द्वातीत को द्वन्द्वभावापन्न प्रतीत करवाता है। अतएव सभी सच्ची साधनायें मन से पार ले जाने की विभिन्न विधियाँ मात्र हैं।

- परमात्मा मनुष्य से यह नहीं पूछेगा कि तुम हिन्दू क्यों न बने, मुसलमान क्यों न बने; जैन, बौद्ध अथवा ईसाई क्यों न बने? परमात्मा कम से कम मनुष्य से यह जरूर पूछेगा कि तुम मानव क्यों न बने?

- हमारे जीवन की अभिरुचि कैसे बदले? हम सच्चा वैराग्य और तीव्र ब्रह्म-जिज्ञासा कैसे प्राप्त करें? कोई परिस्थिति विशेष नहीं वरन् परिस्थिति मात्र ही अल्प, अपूर्ण एवं परिछिन्न है तथा अल्पता और परिछिन्नता में तृप्ति नहीं है—ऐसा विवेक जब मनन एवं आत्म-निरीक्षण करते-करते बोध में परिवर्तित होता है तभी हृदय में सम्यक् वैराग्य अथवा ब्रह्म-जिज्ञासा का उदय होता है।

- आत्मानुभूति का द्वार विचार नहीं वरन् समाधि-चेतना है। चित्त जब राग-द्वेष से पूरी तरह मुक्त, प्रतिक्रिया-शून्य तथा शान्त होता है तो समाधि-चेतना का आविर्भाव होता है।

- माना कि आप बड़े विद्वान् हैं और आपके प्रभावशाली लेखन एवं वक्तृत्व से सारा समाज चमत्कृत है, परन्तु क्या आप शान्त हैं? माना कि आपने धन-सम्पत्ति बहुत

एकत्रित कर ली है, पर क्या आपको परितृप्ति मिली? माना कि आप ने संसार में बहुत ऊँचे पद, अधिकार तथा सम्मान प्राप्त किये, परन्तु क्या आपको आत्मतुष्टि का अनुभव हुआ? अपने मन को बड़ी ईमानदारी से टटोलकर देखिये और अपने जीवन के अनुभवों से कुछ सीखने का प्रयास कीजिये।

- परमात्मा तथा मृत्यु का सतत् स्मरण जिसे बना रहता है उसके जीवन से प्रमाद, आसक्ति, मोह एवं लोभ आदि विकार, अपने आप विदा हो जाते हैं।

- क्या आप शीघ्र प्रभु-प्राप्ति चाहते हैं? तो चौबीस घंटों में केवल एक-दो घंटे भर पाठ-पूजा, जाप अथवा ध्यान में बैठ लेने से ही कुछ न होगा। तब तो यह समझ कर कि अब आपके लिये दुनिया में बस एक ही काम प्रभु-स्मरण का रह गया है, जीवन का एक-एक श्वास

परमात्मा के स्मरण में लगाना होगा। आपके शरीर के सब कर्म, मन के सब संकल्प और बुद्धि के सब विचार जब मात्र प्रभु-प्राप्ति हेतु होने लगते हैं तो आप प्रभु की उस कृपा विशेष के पात्र हो जाते हैं जो भक्त को भगवान् से और साधक को साध्य से मिला देती है।

● क्या प्रारब्ध को भगवदेच्छा ही मानना चाहिये? हाँ, निश्चित रूप से, परन्तु एक भेद के साथ। वह भेद यह है कि प्रारब्ध तो अनिवार्यतः भगवदेच्छा के अधीन होता है। परन्तु भगवदेच्छा प्रारब्ध के अधीन नहीं होती। सच पूछो तो भगवदेच्छा की शुद्ध अभिव्यक्ति सदैव स्वतंत्र, सहज एवं निरपेक्ष होती है।

● सच्चे साधक के लिये उसके जीवन का प्रत्येक क्षण परीक्षा का क्षण होता है और जीवन की प्रत्येक घटना सीखने का स्वर्ण अवसर।

● समस्त श्रम विश्राम के लिये है। परन्तु विश्राम किसी भी श्रम का परिणाम नहीं है। समस्त भाग-दौड़ ठहरने के लिये है, पर ठहराव किसी भी दौड़ का परिणाम नहीं है। समस्त श्रम एवं दौड़ की व्यर्थता के अनुदर्शन तथा अपने सत्य-स्वरूप में जागने के सिवा विश्राम एवं स्थिरता की उपलब्धि का कोई मार्ग नहीं है।

● दुःख, भय, शोक तथा चिन्ता आदि से तो आप छुटकारा चाहते हैं पर अपने भीतर बसे अंहकार, मोह, लोभ, ईर्ष्या आदि को छोड़ने की बजाय आप उन्हें छिपाने तथा उनके संरक्षण के प्रबंध करते हैं। आप अशान्ति के बीज बोकर शान्ति के फल खाना चाहते हैं। ऐसे भी भला किसी को कभी शान्ति मिली है!

● जीवन की बाह्य परिधि पर है अस्थायी दुःख और अस्थायी सुख, परन्तु जीवन के अन्तर्तम केन्द्र पर है

शाश्वत आनन्द; परिधि पर है द्वैत की पीड़ा, पर केन्द्र में है अद्वैत का रस; परिधि पर है परिभ्रमण का व्यर्थ श्रम, पर केन्द्र में है सच्चा स्वरूपभूत विश्राम! आप कहाँ रहना पसंद करेंगे—जीवन की परिधि पर अथवा जीवन के केन्द्र में?

- जिसे सुख की इच्छा नहीं है, उसे दुखी कर सकने का कोई भी उपाय नहीं है। जिसे सम्मान की अपेक्षा नहीं है उसे अपमानित भला किया ही कैसे जा सकता है?

- स्वतन्त्रता आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वतन्त्रता चाहे बिना आप रह भी नहीं सकते। परन्तु आप जो यह चाहते हैं कि आप तो स्वतन्त्र हों और बाकी सब आपके अधीन हों यह भावना सर्वथा अनुचित है। सच्ची बात तो यह है कि आप की इस असद्भावना ने ही आपको परतन्त्र बना रक्खा है। क्या यह सत्य नहीं कि मनुष्य की

परतन्त्रता का मूल कारण यह है कि वह स्वतन्त्रता को गलत तरीके से और गलत जगह खोजने में लगा है?

- दुःख को भगवद् नाते झेल लेना तप है; सुख को भगवद् नाते झेल लेना भी तप है। जब दुःख-सुख दोनों को इस प्रकार झेल लेने की क्षमता साधक में आ जाती है तो वह उस परम चेतना के बोध का अधिकारी होता है, जो दुःख और सुख दोनों से परे है। बोध उपरान्त न दुःख को झेलना ही तप होता है और न सुख को झेलना ही तप होता है।

- विकास के पथ पर मानवता और नैतिकता अनिवार्य तो हैं पर पर्याप्त नहीं है। अहं के सूक्ष्मतम पर्दे को फाड़ दीजिये और अनुभव करिये कि परमात्मा ही परमात्मा है और उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

● क्या आप विषय-भोगों से तृप्ति पाने की कोशिश में हैं? परन्तु जब जन्म-जन्मातरों में भटक-भटक कर भी विषय-वस्तुओं के भोग से आपके मन-इन्द्रियों की तृप्ति नहीं हुई तो भला अब कैसे होगी? संतृप्ति होती है आत्म-साक्षात्कार से। तत्परता से आत्मानुसंधान करो। क्योंकि इधर आप की नजर भोगों पर लगी है तो उधर यमराज की नजर आप पर लगी है।

● महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप कहाँ रहते हैं और क्या कार्य करते हैं। महत्वपूर्ण तो यह है कि आप क्या हैं और किस दृष्टि और भावना से कार्य करते हैं?

● अनुकूल परिस्थितियों में प्रभु-कृपा का गुण-गान करना कोई बड़ी बात नहीं है। प्रतिकूलता में यदि तुम प्रभु-कृपा का सतत् अनुभव करके प्रसन्नचित्त रहो तो बात है!

- साधक को चाहिये कि वह संसार को एक प्रयोगशाला के रूप में स्वीकार करे। यहाँ उसे अपने जीवन पर नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रयोग करके जीवन-जगत में छिपे उस आनन्द तत्त्व को आविष्कृत करना है जिसे ज्ञानियों ने ब्रह्म अथवा शिव, योगियों ने आत्मा और भक्तों ने भगवान के नाम से इंगित किया है।

- पदार्थ-परिस्थितियों का आकर्षण उनकी वास्तविकता जान लेने पर मिट जाता है। परमात्मा का आकर्षण उनका बोध होने पर अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है।

- समस्त दुखः-सुख, बन्धन एवं अपूर्णता का मूल कारण है जीव की गहन मूर्छा। इसी मूर्छा का नाम 'माया' है। इस माया को पार किया जा सकता है प्रभु की शरण होकर उनका सतत् स्मरण करने से।

- आप कितने ही कामी, क्रोधी हों अथवा मोह और प्रपंच में डूबे हुए क्यों न हों, प्रभु आपको उबारने के लिये सदैव तैयार हैं। प्रभु-कृपा को प्रतीक्षा है तो केवल आपकी रज़ामन्दी की। प्रभु को पुकारिये पर सच्चे दिल से, आज से, अभी ही से।

- प्रेम के साथ यदि एक भी शर्त जुड़ी है तो वह प्रेम नहीं वरन् सौदा ही है।

- 'कौन अपना है और कौन पराया'— इसका ठीक निर्णय यदि आप नहीं कर पा रहे, तो घबराइये नहीं, इसका ठीक निर्णय मृत्यु कर देगी। फिर समझोगे कि और तो और अपना प्रतीत होने वाला शरीर तक भी अपना नहीं है। परन्तु उस समय के निर्णय और समझ आपके किस काम आयेंगे? निर्णय लेने का समय तो अभी है और यहीं है,—यही निर्णय कि प्रभु मेरे हैं और मैं प्रभु का हूँ।

- जो मनुष्य अपने मन एवं इन्द्रियों को अपने अधीन नहीं कर सकता उसे किसी न किसी प्रकार से, किसी न किसी रूप में दूसरों के अधीन होना ही पड़ता है—यह नियम इतना ही सत्य है जितना सूर्य का पूर्व दिशा से उदय होना।

- भक्त वह नहीं जो भगवान को अपने अनुकूल बनाने में संलग्न है। भक्त वह है जो पूर्णरूपेण भगवान् के अनुकूल हो गया है। भगवदेच्छा की पूर्ति के अतिरिक्त जिसकी निजी कोई इच्छा नहीं है, जिसके मन-बुद्धि प्रभु समर्पित हैं, वह भक्त सदा-सर्वदा वन्दनीय है।

- मनुष्य जीवन को एक मजबूरी, एक कारागृह के रूप में मत देखिए। इसे प्रभु का सर्वोत्तम उपहार समझकर स्वीकार कीजिये। ऐसा अवसर जिसमें अज्ञानपाश को तोड़ा जा सके वह इसी जीवन में और प्रभु-कृपा से

मिलता है। इसे व्यर्थ की बातों में गवाँ देंगे तो अन्त में हाथ मल-मल कर पछताना पड़ेगा।

● जिस पत्थर के साथ पांव टकराने का खतरा है, सीढ़ी बनने की संभावना भी उसी में है। वह आपकी यात्रा में बाधक बनेगा या सहायक—यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आप बन्द आँखों से चलते हैं या खुली आँखों से।

● कौन ऐसा साधक होगा जो चित्तशुद्धि नहीं चाहता होगा? यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि चित्तशुद्धि के लिये कठिन शारीरिक तपस्या भी इतनी कारगर नहीं होती जितनी कि निःस्वार्थ प्रार्थना। आपका मन जिस व्यक्ति को अपने शत्रु के रूप में प्रस्तुत करे, उसकी भलाई के लिये प्रतिदिन पन्द्रह मिनट प्रभु से प्रार्थना करिये।

● अहंकार से मुक्त होने का उपाय पूछते हैं? क्या हीन भावना से निवृत्ति चाहते हैं?—तो आप अपनी तुलना दूसरों से मत करिये। आप जो हैं वह आपकी नियति है, दूसरा जो है वह उसकी नियति है।

● सगुण-साकार भगवान और निर्गुण-निराकार ब्रह्म के बीच भेद मान कर लड़ना-झगड़ना निरी अज्ञानता है। तत्वतः निर्गुण और सगुण में अथवा निराकार और साकार में भेद है ही नहीं। इन्द्रिय-मन-बुद्धि के माध्यम से देखो तो वह सगुण-साकार है, परन्तु मन-बुद्धि से बाहर (ऊपर) हो कर अनुभव करो तो वही निर्गुण-निराकार।

● आपकी अन्तर्प्रज्ञा यदि सक्रिय है तो आप यह भलीभाँति देख सकते हैं कि प्रतीयमान जड़ तत्त्व छिपे चेतन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

- मृत्यु, बन्धन, अपूर्णता को भूलना नहीं है वरन् इनको पार करना है, इनके बाहर जाना है। किन्हीं भी कृत्रिम उपायों से इन्हें भूलने की चेष्टा करना अथवा इनसे आँखें मूँदना तो इनसे मुक्त होने के अवसर को ही खो बैठना है।

- दुःख में जीते हैं वे जो निराशा में जीते हैं, पर जो आशा में जीते हैं वे और भी बड़े दुःख और बन्धन का स्वयं आवाह्न करते हैं। धन्य तो वे हैं जिन्होंने आशा और निराशा के मध्य के बिन्दु को पा लिया है, क्योंकि शान्ति का साम्राज्य उन्हीं का है।

- बिना सत्य का साक्षात्कार हुए सदाचार का अभिनय तो अवश्य किया जा सकता है पर सदाचारी होना दूसरी ही बात है। सत्यानुभव की स्थिति में जो विचार सहज-स्फूर्त हो वह सद्-विचार है। और सदाचार! सदाचार है सद्-विचारों का क्रिया के रूप में मुक्त स्त्राव।

- क्या आप चाहते हैं कि जन-कल्याण हो? क्या आप समाज को समुन्नत बनाने के इच्छुक हैं? तो सुनिये वह आपके मिटने से ही हो सकता है। क्या आप मिटने को तैयार हैं?

- जहां तक बन पाये समूह के शोर-गुल से दूर रहो। व्यर्थ में दूसरों की बातों में अपने आपको मत उलझाओ। दुनिया के साथ सम्बन्ध बढ़ाने से मिलेगा भी क्या सिवा उत्तेजना और परेशानी के? अपना अधिकाधिक समय प्रभु-स्मरण अथवा प्रभु-सेवा में ही व्यतीत करो।

- यदि आप पूर्ण आनन्द से परितृप्त हो चुके हैं तो आपकी उपस्थिति मात्र ही दूसरों में आनन्द प्रकट करेगी। यदि आप स्वयं आनन्द में प्रतिष्ठित नहीं हैं और आप

समझते हैं कि आप दूसरों को आनन्द देने में लगे हैं तो आप अपने आपको तथा दूसरों को धोखा देने के सिवा कुछ नहीं कर रहे हैं।

- अज्ञानी को धन-पदाधिकार न मिले तो परेशान और मिल जाय तो भी परेशान। और फिर सबसे कठिन होता है उसको यह समझ पाना कि उसके जीवन की सब परेशानियों और उपद्रवों का कारण उसका अपने स्वरूप का अज्ञान ही है।

- सच्चे आनन्द का किसी वस्तु से क्या सम्बन्ध? किसी व्यक्ति अथवा परिस्थिति से उसका भला क्या नाता? उसे किसी कारण की भी क्या अपेक्षा? वह तो सदैव अकारण एवं निरपेक्ष होता है और इसीलिए शाश्वत भी।

● हम सदैव दुःख में नहीं रह सकते और न सदैव सुख में, परन्तु आनन्द में हम अवश्यमेव सदैव रह सकते हैं क्योंकि आनन्द ही हमारा वास्तविक होना है।

● प्रेम और स्वार्थ का भेद पूछते हो? स्वार्थ है सुख की खोज, प्रेम है आनन्द की अभिव्यक्ति, आनन्द का अति प्रवाह (over flowing)। गहराई से देखो—स्वार्थ के पीछे पाओगे वियोग के भय की जलन, प्रेम के पीछे पाओगे सम्मिलन अथवा एकता की शीतलता।

● मोह, आसक्ति, राग, द्वेष आदि विकार जीवन में बिना बुलाये नहीं आ जाते। स्मरण रहे, तुम्हारे प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियों के चिन्तन, उनसे सुख की आशा, कल्पना तथा मुख्यतः जीने के गलत ढंग से ही उनका जन्म एवं पोषण होता है। उनके लिये स्वयं तुम जिम्मेदार हो, केवल तुम ही।

● परमात्मा के अस्तित्व से ही समस्त प्राणी-पदार्थों का अस्तित्व है। परमात्मा का हमसे यदि वियोग हो जाय तो हमारा अस्तित्व ही खो जाय। परमात्मा की प्राप्ति का अर्थ होता है उसके प्रति सजग (aware) होना, उसका स्पष्ट और सीधा बोध।

● पशु पर मनुष्य की श्रेष्ठता मुख्यतः इस बात पर आधारित है कि पशु में चुनाव की क्षमता नहीं है और मनुष्य में चुनाव की क्षमता है। गलत चुनाव का परिणाम होता है दुःख तथा ठीक चुनाव का परिणाम होता है सुख। परन्तु सच्चे आनन्द का द्वार तो तभी खुलता है जब चुनाव की वृत्ति प्रभु-इच्छा में पूर्णतः समर्पित हो जाती है।

● आर्थिक और राजनैतिक परतन्त्रता आत्मवान् मनुष्य के लिये निश्चय ही शर्म की बात है। परन्तु मन और इन्द्रियों की पराधीनता से मुक्त हुए बिना सच्ची स्वतन्त्रता के फूल मनुष्य के जीवन में खिल ही नहीं सकते।

- व्यावहारिक दृष्टिकोण से मनुष्य न तो केवल आत्मा है और न केवल शरीर ही। वह है प्रकृति और पुरुष का संगम। प्रकृति से तद्रूप होने पर उसे अपने में पराधीनता, यान्त्रिकता एवं अस्थिरता की प्रतीति होती है और पुरुष से तद्रूप होने पर सहजता, स्वतन्त्रता और निश्चलता का बोध।

- संकट काल में न तो सुने सुनाये दार्शनिक सिद्धांत ही मनुष्य के काम आते हैं और न कण्ठस्थ की हुई तत्वों की परिभाषायें ही। ऐसे अवसर पर तो बस प्रभु-भरोसा, आत्म-निष्ठा और जगी हुई अन्तर्प्रज्ञा ही काम आते हैं।

- संसार मिला हुआ अथवा मिलता हुआ प्रतीत तो होता है पर कभी मिलता नहीं; परमात्मा खोया हुआ सा प्रतीत होता है पर वस्तुतः उसे खोया जा नहीं सकता। संसार का सम्बन्ध और परमात्मा की दूरी निश्चय ही कल्पित है।

- आपके सेवकों एवं आश्रितों के प्रति आपका व्यवहार सदा वैसा ही नम्रता एवं सद्भावनापूर्ण होना चाहिए जैसा कि आप अपने मालिक अथवा उच्चाधिकारी (boss) से अपने प्रति करवाना चाहते हैं।

- साधना का सम्बन्ध वर्तमान के सदुपयोग से है। भविष्य में भजन करने की कल्पनाओं में समय को बर्बाद न करें। प्रभु नित्य वर्तमान हैं और वर्तमान में ही वे मिलते हैं।

- आनन्द न महल में है और न झोंपड़ी में ही। परन्तु माया की चालाकी देखो कि महल में रहने वाले को लगता है कि आनन्द झोंपड़ी में है और झोंपड़ी में रहने वाले को लगता है कि आनन्द महल में है। पर सच्चा विवेक उदय होने पर पता चलता है कि आनन्द तो बस प्रभु-मिलन में अथवा आत्मबोध में ही है।

- यदि कोई व्यक्ति सर्वलोकों को तथा उनमें विद्यमान प्राणी-पदार्थों के विज्ञान को पूरी तरह समझ ले पर उसके हृदय में प्रभु-चरणों का अनुराग नहीं है तो संतों की दृष्टि में उसका सारा ज्ञान धूल के समान है।

- एक पशु मरता है तो दूसरा पशु पास में खड़ा हुआ निश्चिन्त भाव से जुगाली करता रहता है। उसे अपने मरने का ख्याल भी तो पैदा नहीं होता। विषय-वासना में तल्लीन आज के मनुष्य की भी क्या यही दशा नहीं है?

- परमात्मा के अस्तित्व का प्रमाण पूछते हो? किसी भी प्राणी के चित्त की गहराई में पैनी दृष्टि डालकर देखें और आप वहाँ बिना किसी अपवाद के, देश-काल-वस्तु अपरिछिन्न अनन्त जीवन, अनन्त ज्ञान एवं अनन्त आनन्द की जानी-अनजानी अदम्य आकांक्षा को पायेंगे। आपके लिये क्या यह परमात्मा के अस्तित्व का पर्याप्त प्रमाण नहीं है?

- आत्मानुभूति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे लिया अथवा दिया जा सके। वह तो अन्तस्-चेतना का खुलना और खिलना है। वह स्व-सत्ता का अपने विशुद्ध स्वरूप में प्रकट होना है। वह ऐसी उपलब्धि है जो आत्मा के लिये, आत्मा के द्वारा, आत्मा में ही घटित होती है।

- अध्यात्म-विकास के पथ में प्रभु-नाम-जाप निश्चय ही सबसे सुगम साधन है। जाप होना चाहिये श्रद्धा, प्रेम और मधुरता-पूर्वक। उसे एक यांत्रिक पुनरावृत्ति न बनने दीजिये।

- भौतिक जीवन की समस्याओं का नितान्त हल हो जाना अव्यावहारिक है, वे नित्य नई पैदा होती रहती हैं। उनके दंश से बचने का एक ही उपाय है, और वह है—शाश्वत-जीवन-प्राप्ति की आवश्यकता का तीव्रतम बोध।

● परिस्थितियों को सदा अपने अनुकूल नहीं रखा जा सकता, परन्तु परिस्थितियों में सदा अविचलित रहने की संभावना मनुष्य में निश्चय ही है। वह संभावना सत्यभूत होती है उस ब्रह्मचेतना के साक्षात्कार से जो सदा सर्वदा अचल एवं अविचल है।

● धार्मिक व्यक्ति वह नहीं जो साम्प्रदायिक क्रियाकांड में ही रत है। धार्मिक व्यक्ति वह भी नहीं जो सत्य के सम्बन्ध में अनेकानेक सिद्धान्तों को समझने एवं उनका लेखनी अथवा वाणी द्वारा विवेचन करने में सक्षम है और धार्मिक व्यक्ति वह भी नहीं है जो समाज-कल्याण या परोपकार के नाम पर अपने अहं की तृप्ति में संलग्न है। धार्मिक व्यक्ति तो वह है जिसके अन्दर शाश्वत सत्य के उद्‌घाटन की प्रगाढ़ प्यास का आविर्भाव हुआ है।

● जीवन का दिव्य रूपान्तरण चमत्कारों से नहीं होता। वह मात्र दीर्घकाल तक और सत्कार-पूर्वक किये

गये अभ्यास-वैराग्य से भी संभव नहीं है। जीवन के दिव्य रूपान्तरण की निष्पत्ति तो बस उस अतीन्द्रिय, अतिमानसिक दिव्य चेतना के निरन्तर आवाहन से हो सकती है जो प्राणी के अन्दर निर्बाध रूप से तब सक्रिय होती है जब उसके शरीर, प्राण और मन पूर्ण समर्पित दशा में होते हैं।

- आपके अन्दर होश (बोध) होगा तो प्रतीयमान जड़ वस्तुओं में भी आप को चेतन का अनुभव होगा। आप के अन्दर मूर्छा होगी तो चेतन प्राणियों के साथ भी आप का बर्ताव ऐसा हो जायेगा मानो वे जड़ पदार्थ हों।

- कोई अमुक व्यक्ति ब्राह्मी स्थिति को उपलब्ध है, यह नहीं जाना जा सकता। कोई अमुक व्यक्ति ब्राह्मी स्थिति को उपलब्ध नहीं है, यह जाना जा सकता है।

- दुःख बुरा नहीं है यदि वह भगवान के स्मरण में सहायक होता है। सुख भी बुरा नहीं है यदि वह हृदय में

भगवान के प्रति धन्यवाद की भावना को जगाये तथा भगवान से सम्बन्ध जोड़े। दुःख बुरा है यदि वह भगवान से विमुख करता है। सुख भी बुरा है यदि उसमें भगवान का विस्मरण होता है।

- आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में प्रश्नों के बने बनाये (ready made) और उधार उत्तरों से बुद्धि का कौतूहल भले ही थोड़ी देर के लिये दूर हो जाये, परन्तु सत्य की अन्तर्जिज्ञासा कभी सन्तुष्ट नहीं होती। अन्तरात्मा के सच्चे समाधान के लिये तो आपको स्वयं सत्य को अनुभव करना और उसे जीना ही होगा।

- मनुष्य जीवन की सफलता को इन्द्रिय-भोगों की प्राप्ति के हिसाब से नहीं आंका जा सकता, क्योंकि इन्द्रियों के भोग तो पशु की योनि में भी प्राप्त रहते हैं। इसे पद्-पदार्थों और मान-प्रतिष्ठा के मानदण्ड से भी

नहीं आंकना चाहिये। क्योंकि पद्-पदार्थ और मान-प्रतिष्ठा का रहना अनिश्चित और वियोग अवश्यम्भावी है। मनुष्य जीवन की सफलता तो उसी मात्रा में है जिस मात्रा में मनुष्य शाश्वत जीवन की प्राप्ति के मार्ग में अग्रसर होता है।

- तुम्हारे हृदय में, तुम्हारे कण-कण में आनन्दकन्द परमात्मा बसा है और फिर भी तुम उदास, दुःखी, चिन्तित हो, यह कितने आश्चर्य की बात है! तुम अपने अन्दर तो झांक कर देखो। जिसको तुम बाहर ढूंढ रहे हो वह तुम्हारे अन्दर बैठा तुम्हें पुकार रहा है। क्या तुम उसकी ओर ध्यान नहीं दोगे?

- उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते यदि प्रभु-नाम स्मरण होने लगे तो भगवत्-दर्शन के लिये अन्य किसी भी साधन-अभ्यास की अपेक्षा नहीं रहती।

परन्तु ऐसा हो पाता है तभी जब आपका जीवन पर्याप्त वैराग्य, प्रभु-दर्शन के लिये प्रबल व्याकुलता और अधिकाधिक मौन रहने की सहज अभिरुचि से अनुप्राणित होता है। नाम-स्मरण की मधुर मस्ती सहज से ही पूरे व्यक्तित्व को धो डालती है और अज्ञान के घेरे को तोड़ देती है।



श्रीचन्द्रस्वामीजी का आध्यात्मिक साहित्य

- The Practical Approach to Divinity
  - अनुवाद
    - हिन्दी (भगवद्प्राप्ति)
    - गुजराती
    - फ्रेंच {"L' Art de la Realisation" (Albin Michel), France}
    - जर्मन {"Expendition Erwachen" (Argos Verlag), Germany}
    - हिब्रू (इज़राइल में उपलब्ध)
    - अरबी (बेरूत, लेबनान में उपलब्ध)
- दिव्य-स्फुरण
  - अनुवाद
    - अंग्रेजी (Spiritual Gems)
    - फ्रेंच (Le Rosaire des Instructions Spontanees)
- आनंद दर्पण (बाबा भूमनशाहजी का संक्षिप्त जीवन एवं उपदेश)
  - अनुवाद
    - अंग्रेजी (Mirror of Bliss)
    - फ्रेंच (En Compagnie de Babaji)

- अमृतवाणी (स्वामीजी के पत्रों का संकलन)
- Les Entretiens De La Bergerie (Homo Ludens, France)
  सन् 1987 में स्वामीजी के योरोप प्रवास की अवधि में हुए प्रश्नोत्तरों का (अंग्रेजी/फ्रेंच-दो भाषाओं में) संकलन
- Song of Silence – I (Life sketch of Swamiji & questions-answers)
  अनुवाद
  फ्रेंच (Le Chant Du Silence I)
- Song of Silence – II (questions & answers) – under publication
- चन्द्र-प्रभास (परमसंत श्रीचन्द्रस्वामीजी उदासीन का जीवन-चरित्र एवं उपदेश)

भारतीय संस्करण निम्न पते पर उपलब्ध

साधना केन्द्र आश्रम
ग्राम-डुमेट, पोस्ट-अशोक आश्रम,
जिला-देहरादून, उत्तरांचल, पिन-248125
फोन-01360-22204